जून - 2020
वर्ष-84 | अंक-6 | ₹-18 प्रति | ₹-220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

12 गायत्री उपासना से बदलेगा जमाना
20 स्व की ओर जाने की साधना है जीवन साधना
45 कर्मों की खेती
51 आवश्यकता है युवाओं के संवेदनशील मार्गदर्शन की

www.awgp.org

14 अप्रैल को सुदर्शन न्यूज़ चैनल पर विश्व के प्रतिष्ठित योग गुरुओं के साथ एक कार्यक्रम आयोजित हुआ। यह कार्यक्रम इण्डियन योग एसोसिएशन के सौजन्य से कोरोना महामारी से बचाव एवं रोकथाम के लिए की जाने वाली विविध प्रार्थना एवं जावनाओं में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से किया गया था। इसमें अखिल विश्व गायत्री परिवार के प्रमुख श्रद्धेय डॉ. प्रणव पण्ड्या जी ने सतगुरु अमृत सूर्यानंद, गुरुदेव श्री श्री रविशंकर जी, कमलेश पटेल जी, दिनेश कौशिक जी, साध्वी जगवती सरस्वती जी, एंटोनेता रोजी, डॉ. नगेन्द्र, स्वामी चिदानंद जी, आचार्य लोकेश जी आदि आचार्यों के साथ अपने विचार साझा किए।

श्रद्धेय डॉ. प्रणव पण्ड्या जी ने गायत्री, यज्ञ और प्रार्थना की चमत्कारिक सामर्थ्य का स्मरण कराया। पूरे देश और विश्व में लोगों को इन कार्यक्रमों से जोड़ने का आह्वान किया।

संस्थापक- संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ. प्रणय पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी,मथुरा
दूरभाष नं. (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल न. 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं. (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरकों पर
एस. एम. एस. न करें।
ईमेल- ajsansthan@awgp.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक
वर्ष : 84 । अंक : 06
जून : 2020
ज्येष्ठ-आषाढ़ : 2077
प्रकाशन तिथि : 01.06.2020
वार्षिक चंदा
भारत में : 220/- ₹
विदेश में : 1600/- ₹
आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में : 5000/- ₹

योग

योग का सच्चा अर्थ अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाना है। जो अपने व्यक्तित्व में केंद्रित हो जाता है, स्वस्थ चित्त हो जाता है, सुख-दुःख से, राग-द्वेष से, मान-अपमान से परे व पार हो जाता है, उसके लिए जीवन योगमय, आनंदमय, शांतिमय हो जाता है। ज्यादातर मनुष्य, सतह पर स्वस्थ होने का दिखावा भर करते हैं, उस ढोंग को, उस आडंबर को ढोते हैं, परन्तु उनका वास्तविक रूप अस्वस्थता से, अराजकता से, अव्यवस्था से भरा होता है। जो अपने व्यक्तित्व में समग्रता के साथ केंद्रित हो जाता है उसके लिए व्यक्तित्व एक मुखौटा नहीं रह जाता, जीवन एक आडंबर नहीं रह जाता, उसके लिए जीवन उत्सव बन जाता है, व्यक्तित्व मौलिक बन जाता है। सामान्य क्रम में व्यक्ति अपनी पत्नी के सम्मुख कोई और है, मित्रों के सम्मुख कोई और, बच्चों के सम्मुख कोई और है और मालिक के सम्मुख कोई और। विभिन्न संबंधों के सामने जिन विभिन्न मुखौटों को हम ओढ़ते हैं या हमें ओढ़ना पड़ता है, वे सभी हमें हमारे केंद्र से दूर ले जाते हैं।

मनुष्य यदि अपने भीतर बँटा हुआ है तो उसके लिए, एक समग्र सोच को, एक स्वस्थ चिंतन को प्रस्तुत कर पाना संभव नहीं है। इसीलिए योग, बाहर के भटकावों को छोड़कर अंदर की स्थिरता को प्राथमिकता देता है। चित्त की शुद्धि, मन का ठहराव, व्यक्तित्व की समग्रता व जीवन का संतुलन ही योग की सच्ची परिभाषा है; उचित विवेचना है। इस सत्य की झलक दिखाती संत तिरुवल्लुवर की एक कथा है। एक व्यक्ति उनके पास अत्यंत व्यथित मनःस्थिति के साथ पहुँचा व बोला-भगवन! मुझे मन की शांति दें। भारत का ऐसा कोई मठ, आश्रम, मंदिर नहीं, जहाँ मैं न गया होऊं, ऐसे कोई संत नहीं, जिनके चरणों में मैंने माथा न टेका हो, पर मुझे शांति न मिल सकी। संत तिरुवल्लुवर ने उत्तर में, पास रखा एक सिक्का उठाया, उसे अपनी मुट्ठी में डाल लिया और फिर उससे पूछा- क्या तुम इस सिक्के को बाहर बाग से ढूँढ कर ला सकते हो। आश्चर्यमिश्रित स्वर में वह व्यक्ति बोला-भगवन! जो आपके हाथ के भीतर है वह मुझे बाहर कैसे मिलेगा? संत तिरुवल्लुवर बोले- पुत्र! तब तुम शांति भी बाहर क्यों ढूँढ रहे हो, मन स्थिर करो, मन स्थिर हो जाएगा तो यही शांति तुम्हारे भीतर मिल जाएगी। मन का ठहराव, व्यक्तित्व का संतुलन ही योग है, वही मानवीय व्यक्तित्व का चरमोत्कर्ष भी है। ❑

विषय सूची

- योग 3
- विशिष्ट सामयिक चिन्तन-
  बेरोजगारी का समाधान है स्वावलंबन 5
- आध्यात्मिक संभावनाओं के अनावरण का विज्ञान 7
- यज्ञ- एक समग्र जीवन दर्शन और प्रेरणा प्रवाह 8
- ईश्वरप्राप्ति के सरल सूत्र 10
- पर्व विशेष-
  गायत्री उपासना से बदलेगा जमाना 12
- ध्यान के अभाव से पनपता मनोविकार 14
- आलस्य की महाव्याधि से कुछ ऐसे निपटें 16
- वर्तमान 18
- स्व की ओर जाने की साधना है जीवन साधना 20
- श्रीरामचरितमानस में चरित्र की शिक्षा 22
- बीती ताहिं बिसारिए आगे की सुधि लेय 24
- ऐसे पहुँचे अध्यात्म के हिमालयी शिखर तक 25
- इच्छाशक्ति को ऐसे बनायें प्रबल 28
- तपस्या के प्रतीक ऋषि अगस्त्य 30
- वृद्धाश्रमों का बढ़ता प्रचलन 33
- ईर्ष्यारूपी विष से बचना चाहें तो ऐसे बचें 35
- चेतना की शिखर यात्रा-213
  अवतार प्रक्रिया का रहस्य 38
- भारत की सांस्कृतिक विरासत है नदियाँ 41
- ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार-134
  विकासात्मक पत्रकारिता का विवेचनात्मक अध्ययन 43
- कर्मों की खेती 45
- युग गीता-241
  पुरुषोत्तम रूप को जानने वाला ही होता है सच्चा भक्त 47
- कृषि के ऋषि तंत्र का विकास 49
- आवश्यकता है युवाओं के संवेदनशील मार्गदर्शन की 51
- परम पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी-3
  अध्यात्मिका के मूल सिद्धान्त 53
- विश्वविद्यालय परिसर से-180
  श्रीरामचरितमानस की रामकथा में आदिशक्ति माता पार्वती की तप साधना .58
- अपनों से अपनी बात
  मूर्धन्यों जागो, औरों से रही न कोई आस 63
- कविता (मर्यादित जीवनशैली-शचीन्द्र भटनागर) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

प्रकृति कोरोना के इस कहर में मानवमात्र द्वारा सुरक्षित

जून 2020 व जुलाई 2020 के पर्व-त्यौहार

सोमवार	01 जून	गायत्री जयंती/ परमपूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस	बुधवार	01 जुलाई	देवशयनी एकादशी
			रविवार	05 जुलाई	गुरु पूर्णिमा
मंगलवार	02 जून	निर्जला एकादशी	गुरुवार	16 जुलाई	कामिका एकादशी
शुक्रवार	05 जून	कबीर जयंती	सोमवार	20 जुलाई	सोमवती अमावस्या
बुधवार	17 जून	योगिनी एकादशी	शनिवार	25 जुलाई	नाग पंचमी
रविवार	21 जून	विश्व योग दिवस/ सूर्यग्रहण	सोमवार	27 जुलाई	तुलसी जयंती
मंगलवार	23 जून	श्री जगन्नाथ रथयात्रा	गुरुवार	30 जुलाई	पवित्रा एकादशी

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। - संपादक

बेरोजगारी का समाधान है स्वावलंबन

सुशासन की परिकल्पना से पोषित सरकार ने अच्छी पहल के साथ देश में मेक इन इण्डिया, डिजिटल इण्डिया, स्टार्टअप एण्ड स्टैण्डअप इण्डिया आदि को लेकर पूरी ताकत झोंकी परंतु तब भी रोजगार की स्थिति संतोषजनक नहीं है। संयुक्त राष्ट्र श्रम संगठन की रिपोर्ट इस मामले में मायूसी से भरे इशारे पहले भी कर चुकी थी। इसकी मानें तो सन् २०१७ में भारत में बेरोजगारों की संख्या सन् २०१६ की तुलना में थोड़ी बढ़ी थी जबकि सन् २०१८ में भी यही क्रम जारी रहा। बेरोजगारी का आँकलन सन् १९७२ में शुरू हुआ। मौजूदा हालात बेरोजगारी दर के लिए सर्वाधिक माने जा रहे हैं। एनएसएसओ की रिपोर्ट यह दर्शाती है कि वर्तमान समय में बेरोजगारी तुलनात्मक रूप से कहीं अधिक बढ़ी है। महिला कामगार सबसे ज्यादा बेरोजगारी की शिकार हुई हैं। सेंटर फॉर द मॉनिटरिंग ऑफ इण्डियन इकोनॉमी (सीएमआईई) का सर्वेक्षण कहता है कि बढ़ती हुई बेरोजगारी का आँकड़ा ६.९ फीसदी तक जा चुका है।

इसी की एक रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि पिछले दो वर्षों में एक करोड़ दस लाख नौकरियाँ खत्म हो चुकी हैं। इण्डियन मैन्यूफैक्चरिंग ऑर्गेनाइजेशन और कंफेडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्री ने भी बताया है कि बड़ी तादाद में नौकरियाँ खत्म हुईं। उक्त सर्वे कुछ तो हकीकत से युक्त होंगे ऐसा प्रतीत होता है। नीति आयोग ने बेरोजगारी को लेकर सफाई दी थी कि बेरोजगारी के ऊँचे आँकड़े दिखाने वाली एनएसएसओ की रिपोर्ट अंतिम नहीं है पर ४५ सालों में सबसे ज्यादा बेरोजगारी के आँकड़े हमें कुछ और ही आईना दिखा रहे हैं। अभी तक एक करोड़ के स्थान पर मैन्यूफैक्चरिंग, कन्स्ट्रक्शन तथा ट्रेड समेत ८ प्रमुख सेक्टरों में सिर्फ २ लाख ३१ हजार नौकरियाँ ईजाद हुई हैं; जबकि सन् २०१५ में यही आँकड़ा एक लाख ५५ हजार पर ही आकर सिमट गया था। हालाँकि सन् २०१४ में ४ लाख २१ हजार लोगों को नौकरी मिली थी। सन् २००९ में ही दस लाख से अधिक नौकरियाँ दी गई थीं।

जिस प्रकार रोजगार को लेकर स्थिति कमजोर दिखाई दे रही है उससे तो यही लगता है कि रोजगार बढ़ाना तो दूर लाखों खाली पदों को ही भर दिया गया होता तो भी गनीमत थी। आँकड़े इस ओर इशारा करते हैं कि देश में १४ लाख डॉक्टरों की कमी है, ४० केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में ६ हजार से अधिक पद खाली हैं। देश के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माने जाने वाले आईआईटी, आईआईएम और एनआईटी में भी हजारों पद रिक्त हैं। इंजीनियरिंग कॉलेज २७ फीसदी शिक्षकों की कमी से जूझ रहे हैं जबकि १२ लाख स्कूली शिक्षकों की भी भर्ती जरूरी है।

अब सवाल है कि महत्त्वपूर्ण रिक्तियों को बिना भरे रोजगार की समस्या, बेरोजगारी समेत कई बुनियादी मुद्दों पर किये गये प्रयास विफल प्रतीत हो रहे हैं। रोजगार के अवसर बढ़ें- इसके लिए सरकार ने कौशल विकास मंत्रालय बनाया है। थर्ड और फोर्थ ग्रेड की सरकारी नौकरियों में धांधली न हो इसके लिए साक्षात्कार भी समाप्त किया है। बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज और सीएमआईआई के अनुसार मनरेगा के तहत रोजगार हासिल करने वाले परिवारों की संख्या ८३ लाख से बढ़कर १ करोड़ ६७ लाख हो गई।

अब यह आँकड़े इससे भी ऊपर हैं। आँकड़ों से यह परिभाषित होता है कि ग्रामीण इलाकों में रोजगार मुहैया कराने को लेकर सरकार का जोर सफल हुआ है परन्तु पढ़े-लिखे युवाओं की स्थिति बेकाबू हुई है। भारत एक समावेशी विकास वाला देश है, इसलिए यहाँ बुनियादी समस्याएँ कदम-कदम पर चुनौती बनी हुई हैं। ऐसे में युवा वर्ग बेरोजगारी को देर तक सह नहीं सकता तथा ऐसे में करोड़ों की तादाद में पढ़े-लिखों का सब्र भी जवाब दे रहा है। ६५ फीसदी युवाओं वाले देश में शिक्षा और कुशलता के स्तर पर रोजगार की उपलब्धता स्वयं में एक बड़ी चुनौती है।

मुद्रा बैंकिंग के माध्यम से १२ करोड़ से अधिक लोन धारकों को रोजगार की श्रेणी में सरकार गिनती हैं जो बात पूरी तरह गले नहीं उतरती क्योंकि रोजगार के

लिए लोन लेना इस बात का प्रमाण नहीं है कि सफलता भी सभी को उसी दर पर मिली होगी। वैसे देखें तो सन् २०२७ तक भारत सर्वाधिक श्रम शक्ति वाला देश होगा। अर्थव्यवस्था की गति बरकरार रखने के लिए रोजगार के मोर्चे पर भी खरा उतरना उतना ही जरूरी होगा।

भारत सरकार के अनुमान के अनुसार सन् २०२२ तक २४ सेक्टरों में ११ करोड़ अतिरिक्त मानव संसाधन की जरूरत होगी। ऐसे में पेशेवर कार्यकुशलता का होना उतना ही आवश्यक है। सर्वे कहते हैं कि शिक्षित युवाओं में बेरोजगारी की स्थिति काफी खराब दशा में चली गई है। १८ से २९ वर्ष के शिक्षित युवा में बेरोजगारी दर १०.२ फीसदी जबकि अशिक्षितों में २.२ फीसदी थी। ग्रेजुएट में बेरोजगारी की दर १८.४ प्रतिशत पर पहुँच गई है। अब यह स्वाभाविक है कि भविष्य में अधिक से अधिक शिक्षित युवा श्रम संसाधन में तब्दील हों तभी बात बनेगी। यदि खपत सही नहीं हुई तो असंतोष बढ़ना स्वाभाविक है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट भी बेरोजगारी के आँकड़े को बढ़ते क्रम में आँक रही है। सम्भव है कि अभी राहत नहीं मिलेगी। देश में उच्च शिक्षा लेने वालों पर नजर डालें तो पता चलता है कि ३ करोड़ से अधिक छात्र स्नातक में प्रवेश लेते हैं। ४० लाख के आसपास परास्नातक पाठ्यक्रमों में नामांकन कराते हैं। जाहिर है कि एक बड़ी खेप यहाँ भी तैयार होती है तो रोजगार को लेकर उम्मीद पालती है। देश में पीएच.डी. करने वालों की स्थिति भी रोजगार को लेकर बहुत अच्छी नहीं है।

रोजगार कहाँ से बढ़े और कैसे बढ़े इसकी भी चिंता स्वाभाविक है। इसमें दो राय नहीं कि सभी को सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। ऐसे में स्वरोजगार एक बेहतर विकल्प है। रोबोटिक टेक्नोलॉजी से नौकरी छिनने का डर फिलहाल बरकरार है। इसमें संयम बरतने की आवश्यकता है। ऑटोमेशन के चलते इंसानों की जगह मशीनें लेती जा रही हैं। इससे भी नौकरी आफत में है। छंटनी के कारण भी लोग दर-दर भटकने के लिए मजबूर हैं। जाहिर है जो संगठन के अंदर हैं उन्हें बनाये रखा जाय और जो बेरोजगार बाहर घूम रहे हैं उनके लिए रोजगार सेकटर में नये उप-सेक्टर सृजित किये जायें। विश्व बैंक भी कहता है कि भारत में आईटी इंडस्ट्री में ६९ फीसदी नौकरियों पर ऑटिमेशन का खतरा मंडरा रहा है। सरकार को चाहिए कि ई-गवर्नेंस की फिराक में मानव संसाधनों की खपत को कमजोर न करे और बरसों से खाली पदों को तत्काल प्रभाव से भरे।

रोजगार के लिए शिक्षित युवाओं को अपनी कुशलता से स्वावलम्बी बनना चाहिए। हमें सरकार या किसी और की ओर ताकते रहने की अपेक्षा अपने हुनर, श्रम और कुशलता पर विश्वास करना चाहिए। इस सोच से ही बेरोजगारी को परास्त किया जा सकता है। ❑

युग परिवर्तन अगले दिनों की सुनिश्चित सच्चाई है। ईश्वरीय प्रयोजन पूरे होने हैं। गीता में भगवान अर्जुन को यही समझाते हैं कि यह कौरव दल तो मरा रखा है। तेरे पीछे हटने पर भी वह दूसरी प्रकार से मरेगा। सुनिश्चित सफलता के श्रेय को उपलब्ध करना ही बुद्धिमत्ता है। युग देवता की पुकार सुनने, माँग पूरी करने और प्रेरणा का अनुकरण करने के लिए तो देर-सबेर में सभी को हाथ उठाने और पैर बढ़ाने पड़ेंगे। सराहना उनकी है जो समय रहते चेतते हैं। जाग्रत आत्माओं को ऐसे अवसर पर विशेष भूमिका निभानी पड़ती है। जो युगधर्म को समझते हैं, युग देवता का आह्वान सुनते हैं वे धन्य बनते हैं। उन दिनों जो असमंजस में पड़े रहते हैं, उन्हें समय को न पहचान सकने की सदा पश्चाताप से भरी आत्मप्रताड़ना ही सहन करनी पड़ती है।

-परमपूज्य गुरुदेव

आध्यात्मिक संभावनाओं के अनावरण का विज्ञान

अध्यात्म हमारे स्वभाव से जुड़ी विद्या है। स्व के प्रति हमारा मूलभाव क्या है, इसी के अनुरूप हमारे विचार एवं व्यवहार का स्वरूप निर्धारित होता है। मानव प्रकृति के मर्मज्ञ ऋषियों के अनुसार हमारी मूलप्रकृति विशिष्ट है, विलक्षण है, दिव्य है, जिसका अनावरण अध्यात्म मार्ग पर बढ़ते हुए होता है। इसका शुभारम्भ जीवन के मूल स्वरूप के प्रति जिज्ञासा भाव एवं इसकी आत्यांतिक खोज के साथ होता है।

इस मानवीय प्रकृति की खोज तो आधुनिक मनोविज्ञान भी करता है, जो क्रमश: व्यवहार के अध्ययन से प्रारम्भ करता हुआ मन की अचेतन गहराईयों के विश्लेषण तक पहुँचता है। जहाँ से आगे फिर मानवीय मन के मानवीय एवं सकारात्मक पहलुओं को प्रकाशित करता हुआ मानव प्रकृति की आध्यात्मिक संभावनाओं की ओर बढ़ता है।

मानवीय प्रकृति के दिव्यस्वरूप के प्रति अपने भौतिकवादी संशय के कारण इसके कदम ठिठक जाते हैं जबकि अध्यात्म क्षेत्र का प्रारम्भ ही इस धारणा के साथ होता है कि मानवीय प्रकृति मूलत: दैवीय है। इस अध्यात्म को परमपूज्य गुरुदेव ने उच्चस्तरीय मनोविज्ञान की संज्ञा दी। इस तरह अध्यात्म- जीवन के परम सत्य को व्यक्तित्व के केंद्र में रखते हुए स्व के अनावरण पथ पर आगे बढ़ता है। यहाँ प्रश्न मात्र मन की परतों को जानने भर का नहीं रहता, बल्कि अपने मूलस्वरूप की ओर बढ़ते हुए मन के अंधेरे कोनों का रूपान्तरण भी इसका उद्देश्य होता है। अत: अध्यात्म यहाँ मात्र जिज्ञासा, खोज या चर्चा भर का विषय नहीं रहता, बल्कि जीने की पद्धति, होने का विज्ञान तथा अपने मूलस्वरूप में प्रतिष्ठित होने की प्रक्रिया बन जाता है।

धन्य हैं वो मुमुक्षु जीवात्माऐं, जो अपने स्वभाव, अपनी प्रकृति के भव्यतम, दिव्यतम स्वरूप को जानने व मूर्तरूप देने की प्रक्रिया में सचेष्ट हैं, गतिशील हैं। मानव जीवन पाकर यह चेष्टा करना पहला सौभाग्य माना गया है, क्योंकि इसके बाद ही क्रमिक रूप में जीवन संपूर्ण समाधान की महायात्रा पर आगे बढ़ता है। हालांकि इसकी प्रारंभिक यात्रा वर्तमान के अंधकार, तमस, नश्वर एवं परिवर्तनशील सत्य (असत) से होकर आगे बढ़ती है जहाँ कि व्यक्ति खड़ा होता है लेकिन यह क्रमश: परम सत्य, प्रकाश, शाश्वत जीवन की ओर बढ़ती है, जहाँ जीवन के सकल दु:ख, दुविधाओं व द्वन्द्वों का अंतत: विलोप होता है।

इसलिए अध्याम पथ के राही के लिए जीवन की भौतिक सफलताओं, विभूतियों, धन, ऐश्वर्य, पद, प्रतिष्ठा आदि का अधिक मायने नहीं रहता। ये इस यात्रा के सामयिक पड़ाव भर हो सकते हैं, अंतिम ध्येय नहीं। इसी तरह जीवन के दु:ख, कष्ट, अपमान, पीड़ा आदि आत्मोत्कर्ष की सीढ़ियाँ बन जाते हैं। इस प्रक्रिया में एक अभीप्सु के लिए आध्यात्मिक महापुरुषों का सान्निध्य जीवन की दूसरी बड़ी घटना होती है, जहाँ गुरु के सान्निध्य में वह ईश्वर की दिव्य सत्ता को समझने का अभ्यास करता है, जिसके प्रकाश में फिर उसे अपने आध्यात्मिक स्वरूप का क्रमिक रूप में उद्घाटन होता है।

रेशम का कीड़ा अपने लिए जाला बुनता है और उसी में कैद हो जाता है। मकड़ी अपना जाला बुनती है और उसी में जकड़ कर बैठ जाती है। मनुष्य भी अपनी अहंता का विस्तार करता है और उससे अवरुद्ध होकर भव-बंधनों की जकड़न से त्राहि-त्राहि करता है। माया की गाँठ मनुष्य ही बाँधता है और खोल भी लेता है।

यज्ञ- एक समग्र जीवन दर्शन एवं प्रेरणा प्रवाह

यज्ञ वैदिक संस्कृति का मुख्य प्रतीक है। भारतीय संस्कृति में जितना महत्व यज्ञ को दिया गया है, उतना शायद किसी और क्रियाकलाप को नहीं। कोई भी शुभ-अशुभ कर्म हमारे यहाँ यज्ञ के बिना अधूरा माना जाता है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त; जीवन के हर मोड़ पर इसका विधान जुड़ा रहता है।

यज्ञ मात्र अग्नि में आहुति देने वाला कर्मकाण्ड भर नहीं है, वरन् इसमें एक समग्र और सशक्त जीवन दर्शन छिपा हुआ है। इसकी सरल और सुबोध प्रेरणाओं में मनुष्य को उदार एवं उदात्त बनाने के वे सारे तत्व मौजूद हैं, जो संसार के किसी अन्य दर्शन में उपलब्ध नहीं। इसी कारण इसे भारतीय संस्कृति का पिता कहा गया है। यज्ञीय दर्शन व्यक्ति एवं समाज को श्रेष्ठ, शालीन एवं समुन्नत बनाने में समर्थ है। यज्ञीय प्रेरणाओं को जीवन में उतारा जा सके तो यह स्थायी सुख-शांति का मजबूत आधार बन सकता है।

यजुर्वेद में इस सत्य की स्पष्ट घोषणा है कि सुख-शांति चाहने वाला कोई भी व्यक्ति यज्ञ का परित्याग नहीं करता। जो यज्ञ को छोड़ता है, उसे यज्ञरूप परमात्मा भी छोड़ देते हैं। सबकी उन्नति के लिए आहुतियाँ यज्ञ में छोड़ी जाती हैं और जो नहीं छोड़ता, उसका उत्थान संभव नहीं हो पाता है। सत्पुरुषों को सदा यज्ञपरायण होना चाहिए। यज्ञ से ही बहुत से सत्पुरुष देवता बने हैं। वास्तव में यज्ञ, जीवन के सांसारिक उत्कर्ष के साथ आत्मकल्याण को सिद्ध करने वाला साधन है।

श्रीमद्भगवतगीता में यज्ञ के स्वरूप, दर्शन एवं महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें यज्ञ के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया गया है तथा यज्ञ को जीवन के चरम पुरुषार्थ मोक्ष का कारक माना गया है। गीता के अनुसार, यज्ञकर्म के सिवाय अन्य कर्मों में लगा हुआ मनुष्य कर्मों से बँधता है। इसलिए भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन, आसक्ति से रहित होकर उस परमेश्वर के निमित्त कर्म का भली प्रकार आचरण कर। यज्ञ, इहलोक एवं परलोक को सिद्ध करने वाला तथा मुक्ति का हेतु है।

यज्ञ का वेदोक्त आयोजन शक्तिशाली मन्त्रों का विधिवत् उच्चारण, विधिपूर्वक बनाए हुए कुण्ड, शास्त्रोक्त समिधाऐं तथा सामग्रियाँ जब विधानपूर्वक हवन की जाती हैं, तो उनका दिव्य प्रभाव विस्तृत आकाश मण्डल में फैल जाता है। उसके प्रभाव के फलस्वरूप प्रजा के अन्त:करण में प्रेम, एकता, सहयोग, सद्भाव, उदारता, ईमानदारी, संयम, सदाचार, आस्तिकता आदि सद्गुणों का स्वयमेव आविर्भाव होने लगता है। इस तरह व्यक्ति एवं समूह पर यज्ञ के अद्भुत सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं।

वस्तुत: यज्ञ, यज् धातु से बना है, जिसके तीन अर्थ हैं- १. देवपूजन, २. संगतिकरण और ३. दान। इन तीनों प्रवृत्तियों में व्यक्ति एवं समाज के उत्कर्ष की संभावनाऐं विद्यमान हैं। देवपूजन का अर्थ है- परिष्कृत व्यक्तित्व, दैवी-सद्गुणों का अनुगमन। संगतिकरण अर्थात् एकता, सहकारिता, संघबद्धता। दान अर्थात् समाजपरायणता, विश्व कौटुम्बिकता एवं उदार सहृदयता। इन तीनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व यज्ञ करता है। सरल भाषा में यज्ञ का अर्थ दान, एकता, उपासना से है, जो मिलकर वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्कर्ष के सशक्त साधन हैं।

यज्ञ से जुड़ा केंद्रिय तत्व- अग्नि, स्वयं अजस्र प्रेरणाओं से भरा हुआ है, जिसके महत्व को समझाते हुए ऋग्वेद में यज्ञाग्नि को पुरोहित की संज्ञा दी गई है। उसकी शिक्षाओं पर चलकर लोक-परलोक दोनों सुधारे जा सकते हैं, जिसमें निहित शिक्षाऐं निम्नांकित हैं।

अग्नि में जो कुछ भी बहुमूल्य पदार्थ हवन किए जाते हैं, उसे वह संग्रहित नहीं रखती, बल्कि सर्वसाधारण के उपयोग के लिए वायुमण्डल में बिखेर देती है। इसी तरह हमारी शिक्षा, समृद्धि, प्रतिभा, प्रभाव आदि का न्यूनतम उपयोग करते हुए शेष का अधिकाधिक उपयोग जन-कल्याण के लिए होना चाहिए।

जो भी वस्तु अग्नि के सम्पर्क में आती है, उसे वह दुत्कारती नहीं, बल्कि स्वयं में आत्मसात कर अपने जैसा बना लेती है। इसी तरह हमारे संपर्क में जो पिछड़े, छोटे या पीड़ित व्यक्ति आऐं, उन्हें आत्मसात कर अपने जैसा बनाने का प्रयास हममें से प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए।

अग्नि की लौ पर कितना ही दबाव पड़े, लेकिन वह दबती नहीं, बल्कि ऊपर को ही उठी रहती है। इसी तरह हमारे सामने कितने ही भय, प्रलोभन एवं विषम परिस्थितियाँ क्यों न आऐं, हमें अपने मनोबल, संकल्प एवं जिजीविषा को दबने नहीं देना चाहिए, बल्कि अग्निशिखा की भाँति ऊँचा उठाए रखना चाहिए।

अग्नि जीवनपर्यन्त अपनी ऊष्णता एवं प्रकाश की विशेषताओं को नहीं छोड़ती। उसी प्रकार हमें सदैव पुरुषार्थपरायण एवं कर्तव्यनिष्ठ जीवन जीना चाहिए और अपनी सक्रियता की गर्मी तथा धर्मपरायणता की रोशनी घटने नहीं देनी चाहिए।

यज्ञाग्नि में आहूत सामग्री अंतत: यज्ञ भस्म के रूप में शेष बचती है। इसको मस्तक पर लगाते हुए हमें भाव करना चाहिए कि इस मानव तन का अन्त मुट्ठीभर भस्म के रूप में होना तय है। ऐसे में जीवन के इस नश्वर सत्य को ध्यान में रखते हुए, अपने शेष जीवन के श्रेष्ठतम उपयोग का प्रयत्न करना चाहिए।

यज्ञाग्नि अपने में आहूत सामग्री को वायुरूप बनाकर समस्त जड़-चेतन प्राणियों को बिना किसी अपने-पराये, मित्र-शत्रु का भेद किये गुप्तदान के रूप में बिखेर देती है, जो स्वयं में एक विलक्षण शिक्षण है। इसी तरह हमारा जीवन भी समस्त प्राणियों के लिए एक वरदानस्वरूप होना चाहिए। अपने संसाधन, उपलब्धियों व ज्ञान को हमें मुक्तहस्त से लोककल्याण में लगाने की प्रेरणा यज्ञाग्नि से लेनी चाहिए।

इस तरह यज्ञ स्वयं में प्रचण्ड प्रेरणाओं से भरा एक आध्यात्मिक प्रयोग है, जिसे यदि उचित विधि से सम्पन्न किया जाए तो इसके कर्मकाण्ड द्वारा देव आवाहन, मंत्र प्रयोग, संकल्प एवं सद्भावनाओं की सामूहिक शक्ति से एक ऐसी सशक्त ऊर्जा पैदा की जाती है, जिसके द्वारा मनुष्य की अंत:वृत्तियों को गलाकर इच्छित स्वरूप में ढाला जा सकता है। भाग लेने वालों में वांछित, हितकारी परिवर्तन बड़ी मात्रा में लाये जा सकते हैं। इस तरह यज्ञ व्यक्तित्व के रूपांतरण का एक गहरा मनो-आध्यात्मिक प्रयोग है, जिससे मनुष्य के प्रसुप्त देवत्व के जागरण का प्रयोजन सिद्ध होता है। इसके साथ इससे परिवार में संस्कारों का रोपण किया जा सकता है तथा समाज निर्माण एवं वातावरण के सूक्ष्म परिष्कार का प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है।

इस तरह यज्ञ एक समग्र जीवनदर्शन है, जो सशक्त प्रेरणा प्रवाह लिए हुए है। यज्ञ को जीवन का अभिन्न अंग बनाते हुए हम अपने व्यक्तित्व के रूपांतरण के गहन प्रयोग को सम्पन्न कर सकते हैं तथा दूसरों को इसके लिए प्रेरित करते हुए परिवार, समाज, प्रकृति एवं सकल सृष्टि के हित साधन का माध्यम बन सकते हैं। ❑

बात उन दिनों की है जब बुद्ध के प्रथम शिष्य आनन्द श्रावस्ती पहुँचे। नगर के श्रेष्ठियों ने उनसे पूछा कि 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' का अर्थ महात्मा बुद्ध की शरण में जाना होता है क्या? यदि ऐसा है तो यह क्या महात्मा बुद्ध के अहंकार का द्योतक नहीं?'

आनन्द बोले-'श्रेष्ठि! क्या आपको पता है कि जब श्रवण समूह चलता है तो यह सूत्र सभी बोलते हैं, स्वयं बुद्ध भगवान भी। व्यक्ति की शरण में जाने का भाव इसमें होता तो वे स्वयं न दुहराते।' आनन्द ने स्पष्ट किया- 'तथागत का नाम तो सिद्धार्थ था। ज्ञान के प्रकाश का बोध होने पर वे बुद्ध कहलाए। जिस प्रकाश ने उन्हें बुद्ध बनाया उसी दिव्य, दूरदर्शी विवेक की शरण में जाने का संकेत इस सूत्र में है।'

ईश्वरप्राप्ति के सरल सूत्र

हिमालय में रहकर वर्षों की अखंड तपस्या सम्पन्न कर संत शान्तिदेव सविकल्प समाधि की अवस्था से अभी-अभी बाहर निकले थे। समाधि की चरम व गहन अवस्था में पहुँचकर उनकी आत्मा ब्रह्मज्ञान की ज्योति से जगमगा चुकी थी। उनकी आत्मा में परमात्मा का परम प्रकाश, उतर आया था। उनका चित्त गंगाजल सा पुनीत व पावन हो चुका था और उनके हृदय सागर में करुणा, प्रेम, क्षमा, सत्य आदि ईश्वरीय गुणों की ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं और उन ऊँची-ऊँची लहरों के बीच बैठे संत शांतिदेव मानो संपूर्ण सृष्टि, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आलिंगन कर रहे थे।

वे अपने शरीररूपी पिंड में ही संपूर्ण ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन कर रहे थे और उससे नि:सृत दिव्य एवं ईश्वरीय आनंद की आत्मिक अनुभूति कर रहे थे। अपने खुले हुये नेत्रों से वे ऊँचे नीले गगन को निहार रहे थे और उसी नीले गगन में चमकते, जगमगाते सूर्य, चंद्र, तारे आदि सबको अपने अंतस के आकाश में भी चमकने, दमकने की प्रत्यक्ष अनुभूति कर रहे थे। उनके रोम-रोम में आनन्द भरी पुलकन की एक दिव्य सिहरन हुये जा रही थी।

इसी आत्मिक भावदशा में घंटों बैठे-बैठे वे इस जगत को साक्षी भाव से, द्रष्टा भाव से निहार रहे थे। इस जगत के संपूर्ण प्राणियों को स्नेह व करुणा भरी दृष्टि से देख रहे थे। जगत के कल्याण हेतु उनके मन में दिव्य प्रेरणायें कहीं ऊँचे लोक से उतर रही थीं। वे सोच रहे थे कि जगत के लोगों के कल्याण हेतु उन्हें अवश्य ही कुछ करना चाहिए। शायद उनके लिये यह ईश्वरीय संदेश भी था और प्रेरणा भी।

इसी दिव्य संदेश व प्रेरणा को हृदय में धारण किये हुये वे हिमालय से नीचे उतरे और अगले ही दिन जन-जन के बीच जाकर ज्ञान की अलख जगाने को निकल पड़े। कई तीर्थों की यात्रायें करते हुये, भ्रमण करते हुये वे जन-जन के बीच जाकर उन पर परमात्मा के अमृततुल्य ज्ञान का अभिसिंचन करने लगे। चलते-चलते वे गंगा तट पर पहुँचे और फिर वहीं एक छोटी सी कुटिया बनाकर रहने लगे। अपनी नियमित तप-साधना से निवृत्त होकर वे अपना शेष समय प्राय: लोगों को ईश्वर का अमृतमय उपदेश, संदेश देने में ही बिताया करते थे।

उस दिन सोमवती अमावस्या होने के कारण गंगा तट पर लोगों की बड़ी भारी भीड़ उमड़ आई थी। लोग गंगास्नान के बाद स्वत: ही संत प्रवर की कुटिया के पास एकत्रित होने लगे थे। देखते ही देखते वहाँ हजारों लोग जमा हो गये। सबने संत प्रवर का अभिवादन किया एवं वहीं स्थान ग्रहण किया। वे अभी भी मौन थे, कि तभी उसी भीड़ में बैठे एक श्रद्धालु व्यक्ति ने संत प्रवर के चरणों में अपना प्रणाम निवेदित करते हुये कहा- भगवन! हम सब अज्ञानी हैं, हमें शास्त्रों का ज्ञान नहीं है। हम गृहस्थ हैं और गृहस्थी के कार्यों में ही संलग्न रहते हैं। क्या कोई ऐसा मार्ग है, उपाय है, जिसे अपनाकर हम जैसे सामान्य लोग भी ईश्वरप्राप्ति जैसे परम लक्ष्य को पा सकें? भगवन! अज्ञान में पड़े हुये हम जैसे लोगों के संशय का निवारण आप जैसे सर्वगुणसम्पन्न संत व दुर्लभ महात्मा ही कर सकते हैं। इसलिये हे भगवन! आप हम सब का मार्गदर्शन करें।

संत प्रवर बोले- वत्स! यह संपूर्ण सृष्टि साक्षात ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है। इस सृष्टि के रूप में, संसार के रूप में परमपिता परमेश्वर स्वयं को ही अभिव्यक्त कर रहे हैं। इसलिये इस जगत को ईश्वर का रूप मानकर इसकी सेवा करना साक्षात ईश्वर की ही सेवा है। इस सृष्टि में तुम्हारे द्वारा किया गया हर कर्म ही ईश्वर के चरणों में अर्पित हो रही पूजन सामग्री है। इसलिये तुम्हारे द्वारा किये गये प्रत्येक शुभ व पुण्य कर्म ही ईश्वर की सच्ची पूजा हैं।

वे आगे बोले- ईश्वर ने मानव जीवन के रूप में हम सबको एक बहुमूल्य उपहार दिया है। हमारे पास जो भी समय है, श्रम है, साधन है, प्रतिभा है वह स्वयं के पेट, परिवार व प्रजनन की संकीर्ण परिधि में रहकर, उसे समाप्त कर देने के लिये नहीं है। ईश्वर द्वारा प्रदत ये सारे साधन हमें इस सृष्टि की सेवा के लिये मिले हैं, जन-जन की सेवा के लिये मिले हैं। इस संसार में सेवा के बीज बोकर हम औरों के साथ-साथ स्वयं

अपना भी भला कर सकते हैं; क्योंकि हमारे द्वारा किये गये सेवा के कार्य से हमारी चित्त की शुद्धि होती है जिसमें हमारे लिये एक ओर तो ईश्वरप्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है तो वहीं दूसरी ओर हमारे द्वारा किये गये शुभ कर्मों से जो हमें पुण्य प्राप्त होता है उससे हमें भौतिक सुख-समृद्धि भी प्राप्त होती है।

संत आगे बोले- द्वितीय सूत्र यह है कि तुम सब हमेशा अपनी मृत्यु का स्मरण रखो। यह जीवन क्षणभंगुर है। मृत्यु का स्मरण रखने से तुम इस संसार के प्रति होने वाली आसक्ति के बंधन से मुक्त रह सकोगे। तृतीय महत्त्वपूर्ण सूत्र यह है कि तुम्हें इस बात का हमेशा स्मरण रहना चाहिये कि ईश्वर सर्वत्र है, सर्वव्यापी है, न्यायकारी है। जो ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वव्यापी है, न्यायकारी है वह हमारे द्वारा किये जाने वाले हर कर्म का साक्षी है। इस बात का स्मरण रहने से तुम सदैव बुरे, अशुभ व पाप कर्म करने से बचे रहोगे और हमेशा शुभ कर्म करते रहने से तुम्हें हमेशा शुभ फल, मधुर फल ही प्राप्त होंगे।

संत ने आगे कहा- चतुर्थ महत्त्वपूर्ण सूत्र यह है कि संपूर्ण प्राणियों के प्रति कोमलता का व्यवहार करना, व्यवहार में सरल व निश्छल होना, मीठे वचन बोलना, आलस्य-प्रमाद व निंदा-चुगली से दूर रहना, देवताओं, पितरों और अतिथियों को उनका भाग देना, सात्विक-आहार ग्रहण करना, वीतराग पुरुषों का संग करना, उन्हें गुरु रूप में वरण करना, उनकी आज्ञापालन करना एवं नित्य-निरंतर पुण्यकर्मों में लगे रहना आदि निश्चित ही कल्याण के मार्ग हैं। इनसे उद्देश्य की प्राप्ति होने में कुछ भी संशय नहीं है। वत्स! पंचम सूत्र यह है कि तुम सब हमेशा शास्त्रों का स्वाध्याय करना। शास्त्रों का स्वाध्याय करने से तुममें सदा शुभ विचारों, प्रेरणाओं व संकल्पों का जागरण होगा जिसके प्रभाव में रहकर तुम सदा सच्चाई के मार्ग पर चल सकोगे और शुभ कर्म कर सकोगे। तुम पर कभी बुरे व अशुभ विचार हावी नहीं हो सकेंगे।

संत प्रवर के इस अमृतमय संदेश को श्रवण कर वहाँ उपस्थित हजारों लोग स्वयं को धन्य-धन्य महसूस करने लगे। आज उन्हें लग रहा था कि आज जल स्नान के साथ-साथ ब्रह्मोपदेश पाकर सचमुच ही अमृत स्नान भी कर लिया है। संत प्रवर की दिव्य अमृतवाणी को हृदय में धारण किये हुये व उसे अपने जीवन में जीने की सद्प्रेरणा लिये हुये सभी श्रद्धालु भक्तगण वहाँ से अपने-अपने गंतव्य को प्रस्थान हुये। ❑

बैकुण्ठ में बड़ी भीड़ थी। महाविष्णु आसन पर विराजमान होकर सभी प्राणियों को त्रैलोक्य की सपदा वितरित कर रहे थे। उन्होंने संकल्प किया था कि आज किसी को रिक्त हस्त नहीं जाने देंगे। धन-रत्न, पुत्र-पौत्र, स्वास्थ्य-सौय, वैभव-विलास माँगने वालों का तांता टूट नहीं रहा था। महाविष्णु उदारतापूर्वक सबकी इज्छा पूरी कर रहे थे। बैकुण्ठ का कोष रिक्त होते देख महालक्ष्मी वहाँ पहुँचीं और पति का हाथ पकड़कर बोलीं- 'यदि इसी प्रकार आप मुक्त भाव से सपदा लुटाते रहे तो बैकुंठ में कुछ भी शेष न रहेगा। तब हम क्या करेंगे?' महाविष्णु मंद-मंद हँसे और बोले- 'देवि! मैंने सारी सपदा तो नहीं दी। एक निधि ऐसी है जिसे नर, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर एवं असुर में से किसी ने भी नहीं माँगा है।' 'कौन सी निधि?' महालक्ष्मी पूछ बैठीं। 'शान्ति- उसे कोई नहीं माँगता। ये प्राणी भूल गए हैं कि शान्ति के बिना कोई भी सपदा पास नहीं रह सकेगी। उन्होंने जो माँगा वह मैंने उन्हें दे दिया। अपने लिए मैंने मात्र शान्ति की निधि सुरक्षित रख ली है। आस्थाहीन व्यक्ति न शान्ति माँगते हैं, न उन्हें दी जा सकती है।'

गायत्री उपासना से बदलेगा जमाना

गायत्री की उपासना के माध्यम से अपने जीवन को कल्पवृक्ष के सदृश बना लेने वाले परमपूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व में अगनित उन सिद्धियों का समावेश था, जिनका उल्लेख भारतीय दर्शन के अनेकों साधना ग्रंथों में पढ़ने को मिलता है। उन सिद्धियों के विषय में पढ़ते तो सभी हैं, टीवी सीरियलों में वैसा अभिनय करने वाले भी अनेकों मिल जाते हैं पर वैसे व्यक्तित्वों को सशरीर देख पाने को लगभग हर कोई तरसता नजर आता है।

ऐसा सौभाग्य गायत्री परिजनों को मिल सका क्योंकि उनका स्वयं का जीवन उन सारे सिद्धांतों का प्रकट प्रमाण था, जिन्हें गायत्री उपासना के माहात्म्य के साथ जोड़ करके देखा जाता रहा है। अपने ८० वर्षों के जीवन को उन्होंने जिस कसौटी पर कस करके जिया और परिणाम में जिस तरह के चमत्कार सर्वत्र देखने को मिलते हैं, वह एक खुली किताब की तरह से है। उससे मार्गदर्शन प्राप्त करके कोई भी, कभी भी साधना से सिद्धि संबंधी उक्ति को चरितार्थ होते देख सकता है।

गायत्री की उपासना के माध्यम से समस्त विश्व के कल्याण का पथ किस तरह से प्रशस्त किया जा सकता है– इस विषय में पूज्यवर अनेकों जगहों पर अनेकों बार बोले होंगे। क्षेत्र से आए परिजनों से हुई एक मुलाकात पर हुई चर्चा के संस्मरण को कुछ ऐसे ही भाव के साथ देखा जा सकता है। घटना संभवतया सन् १९८० की रही होगी। परमपूज्य गुरुदेव कुछ शक्तिपीठों की प्राण प्रतिष्ठा का क्रम सम्पन्न करके वापस शान्तिकुंज लौटे ही थे कि मध्य प्रदेश के कुछ कार्यकत्ताओं का एक समूह भी उनसे मिलने को पहुँचा। आते से ही उन्होंने पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी से यह साझा किया कि शान्तिकुंज में प्रवेश करते ही कैसी दिव्यता का आभास उन लोगों को होता है।

उनकी बातें सुनकर परमपूज्य गुरुदेव मुस्कराए और बोले–बेटा! यह शान्तिकुंज एक साधारण स्थान नहीं है। ये आदिशक्ति गायत्री का साक्षात निवास स्थान है। वर्तमान समय में महाकाल मानवी चेतना में आमूलचूल परिवर्तन करना चाहते हैं। यदि मानवीय चेतना का, मनुष्य की मन:स्थिति का रूपांतरण हो गया तो धरती पर स्वर्ग स्वत: ही आ जाएगा। ऐसा कहते हुए पूज्य गुरुदेव बोले–बेटा! चाहे शान्तिकुंज की स्थापना का संकल्प हो या गायत्री की उपासना का प्रयोग–ये जितने भी निर्धारण हैं, ये इसी एक लक्ष्य को केंद्र में रखकर लिए गए है। धर्मतंत्र से लोकशिक्षण से लेकर शान्तिकुंज की स्थापना तथा तीर्थों की प्रसुप्त चेतना जगाने से लेकर भारतभूमि की देवात्मा शक्ति से कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया हमारे द्वारा इसी उद्देश्य से सम्पन्न की गई है। इन सब प्रयोगों के पीछे शक्ति आदिशक्ति माँ गायत्री की ही काम कर रही है।

क्षेत्र से आए कार्यकर्त्ताओं के मनों को ये शब्द हिला कर रख रहे थे। वे स्तब्ध होकर इन बातों को सुन रहे थे। परमपूज्य गुरुदेव थोड़ा रुके, कुछ अन्य परिजन जो दूसरे स्थानों से आए थे, उनसे बातचीत करी और फिर इस समूह को संबोधित करते हुए बोले– बेटा! इसीलिए ये जरूरी हो जाता है कि सारे वातावरण को ही गायत्रीमय बना दिया जाए। गायत्री उपासना चिरकाल से ही इस देश को शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करती रही है। इस युग के लिए तो वह संजीवनी बूटी की तरह से है। गायत्री उपासना के माध्यम से यदि वातावरण को संस्कारित करने का कार्य कर लिया गया तो उससे जो प्रकाश व पुण्य जन्म लेगा वह राष्ट्र व विश्व को संयत, स्वस्थ व समर्थ देवभावनाओं से ओतप्रोत रखने का गतिचक्र अपने आप चलने लगेगा।

गुरुदेव प्रवाह में अपनी बातें कहे जा रहे थे और वहाँ बैठे लोग शांत व स्थिर होकर उस दैवीय ऊर्जा की उपस्थिति को निरंतर महसूस कर रहे थे। गुरुदेव आगे बोले- ये जो गायत्री उपासना के केंद्र हैं, शक्तिपीठें हैं, प्रज्ञापीठें हैं, प्रज्ञा संस्थान हैं- इनकी स्थापनाऐं भारत के कोने-कोने में करनी जरूरी हैं क्योंकि इनके माध्यम से आदर्शवादी सत्प्रवृत्तियों का एक प्रवाह आने वाले दिनों में जन्म लेगा जो संपूर्ण विश्व को मथ करके रख देगा। सच पूछो तो इन दिनों मनुष्य का भाग्य और भविष्य नए सिरे से लिखा और गढ़ा जा रहा है। ऐसा विलक्षण समय कभी हजारों-लाखों वर्षों के बाद ही आता है। इन्हें चूक जाने वाले सदा पछताते ही रहते हैं और जो उसका सदुपयोग कर लेते हैं, वे अपने आपको सदा सर्वदा के लिए अजर-अमर बना जाते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव आगे कहने लगे- बेटा! गायत्री की उपासना ही ये सब कर पाने में समर्थ है। गायत्री की उपासना को ही तुम सच्ची आध्यात्मिकता कह सकते हो। आज के समय में आध्यात्मिकता का अर्थ लोग बाजीगरी से लेते हैं और सिद्धियों का तात्पर्य एक ऐसे अजूबे से निकालते हैं जो कौतुक पैदा करता हो चाहे वह निरर्थक ही क्यों न हो। यदि किसी ने हाथ में से बालू निकाल भी दी तो उससे समाज का क्या भला हो जाता है ? हवा में हाथ मारकर इलायची या मिठाई मँगा देने जैसे काम गायत्री उपासकों के जीवन पथ का अंग नहीं हैं। गायत्री की उपासना तो सच्चे अर्थों में साधना करने पर बहुमूल्य सिद्धि प्रदान करती है।

कुछेक के मन में जिज्ञासा उभरी कि गायत्री उपासना करने से कौन सी सिद्धि साधक को मिलती है तो गुरुदेव समाधान करते हुए बोले- साधना से सिद्धि का तात्पर्य उन विशिष्ट कार्यों से है जिनका संबंद्ध लोकमंगल से है। ये कार्य इतने बड़े, भारी व व्यापक होते हैं कि एकाकी संकल्प के द्वारा अनेकों बार उन्हें कर पाना संभव नहीं होता तब भी वे पूर्ण विश्वास के साथ उसे करने को आगे बढ़ते हैं और सफल भी होते हैं। ऐसा महती पुरुषार्थ गायत्री साधना द्वारा ही संभव है और ऐसे विशाल कार्य का नाम ही युग परिवर्तन है।

इतना कहते-कहते परमपूज्य गुरुदेव अपने स्थान पर खड़े हुए। वातावरण की नीरवता उनके खड़े होने से भंग हुई और जो परिजन लगभग भावसमाधि की अवस्था में पहुँच गए थे, वे चैतन्य से होने लगे। गुरुदेव का खड़ा होना उनके लिए इशारा था कि वे अब दूसरे क्रम के लिए निकल रहे थे पर साधकों का ये समूह अपने जीवन के लिए एक महत्त्वपूर्ण दिशा को पा चुका था।

❑

ऐंजिल डेविस बर्मिंघम के निकट एक छोटे देहात में जन्मीं। अश्वेत परिवार में जन्मने के कारण उसे भी उन अभावों और अपमानों का सामना करना पड़ा जो पददलित जातियों को करना पड़ता है। बचपन अध्ययन में बीता। उन्होंने एम.ए., पी.एच-डी. किया। एक स्कूल में अध्यापिका बन गईं पर इतना ही उसके लिए सब कुछ नहीं था। वह अपने जातीय पददलितों को मानवोचित अधिकार दिलाना चाहती थी। इसलिए उसने मार्टिन लूथर किंग के साथ मिलकर कितने ही रचनात्मक और संघर्षात्मक आंदोलनों में हिस्सा बँटाया।

ध्यान के अभाव में पनपता मनोविकार

हमारे मन का स्वभाव चंचल है, इसलिए हमारा मन आसानी से स्थिर व एकाग्र नहीं हो पाता और यदि स्थिर होता भी है, तो वह आसानी से भटक भी जाता है। सामान्य जीवन में मन का अस्थिर होना, मन का भटकना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, लेकिन यदि मन की यह अस्थिरता बहुत ज्यादा हो, तो इसे नजरअंदाज करना ठीक नहीं है क्योंकि मन का अस्थिर होना भी एक प्रकार का मनोविकार है, जिसे मनोविज्ञान की भाषा में 'ध्यान अभाव अतिसक्रियता विकार' कहा जाता है।

यह एक मनोवैज्ञानिक व मानसिक समस्या है, जो आमतौर पर बच्चों व किशोरों में देखने को मिलती है। यदि सही समय पर इसका उपचार न किया जाए, तो वयस्क अवस्था में भी इसके लक्षण आ सकते हैं। शुरुआती दौर में कोई भी मनोविकार बहुत सामान्य लक्षणों के साथ शुरु होता है, लेकिन यदि इस पर गौर न किया जाए, इस पर ध्यान न दिया जाए, तो फिर इसके लक्षण धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आने लगते हैं और अपने विकार की गंभीरता को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए चिन्ता व तनाव हम सभी को होते हैं, लेकिन यदि आवश्यकता से अधिक चिन्ता व तनाव हमें घेरे रहते हैं, तो उसके कारण उससे सम्बन्धित मनोरोग हमारे अन्दर पनप जाते हैं।

इसी तरह किसी का ध्यान न लगना और मन को सहजता से किसी कार्य में केन्द्रित न कर पाना कोई विकार नहीं है, लेकिन जब यह प्रक्रिया हमारे स्वभाव का अंग बन जाए, हमें विचलित व परेशान करने लगे, तो यह धीरे-धीरे ध्यान अभाव अतिसक्रियता मनोविकार में तब्दील हो जाता है, जिसका उपचार करना जरूरी हो जाता है।

ध्यान अभाव अतिसक्रियता विकार के मुख्य लक्षण हैं- ध्यान देने में दिक्कत होना, आवेगी व्यवहार, असावधानी व अतिसक्रियता आदि। इस विकार से पीड़ित व्यक्ति में आत्मसम्मान की कमी, रिश्तों या सम्बन्धों में तनाव एवं विद्यालय या कार्यस्थल पर कई तरह की परेशानियाँ आदि पनप जाते हैं। चूँकि ऐसे लोगों को ध्यान देने में दिक्कत महसूस होती है, इसलिए ये अपने कार्यों एवं गतिविधियों का संचालन मुश्किल से कर पाते हैं।

इस विकार के कारण बच्चों को अपने विद्यालय से मिलने वाले ऐसे कार्य, जिनमें उनकी रुचि नहीं होती, उन्हें पूरा करना बहुत मुश्किल लगने लगता है। वयस्कों में यह विकार होने पर वे ऐसी परिस्थितियों में भी व्यग्र होने लगते हैं, जो बहुत सामान्य होती हैं। इस विकार से ग्रसित व्यक्ति आवेगपूर्ण स्थिति में एक स्थान पर कुछ समय के लिए निश्चिन्त होकर बैठ नहीं सकता और स्थिति प्रतिकूल होने पर वह अपना स्थान ही छोड़ देता है।

ऐसे लोग छोटी सी बात पर भी खतरनाक जोखिम उठाने को तैयार हो जाते हैं या किसी भी बात पर तुरन्त अपनी प्रतिक्रिया दे देते हैं, बिल्कुल भी धैर्य नहीं रखते हैं और न ही कुछ करने से पहले सोच-विचार करते हैं। ऐसे व्यक्ति को किसी कार्य के लिए अपनी बारी का इंतजार करना मुश्किल प्रतीत होता है। ऐसे लोग बातचीत करने में हमेशा बाधा डालते हैं और जबरदस्ती किसी भी मुद्दे को लेकर उस पर बहस करने लग जाते हैं।

ध्यान अभाव अतिसक्रियता विकार ज्यादातर आनुवांशिक होता है। हालाँकि कुछ अन्य कारण भी इसके लिए जिम्मेदार होते हैं। जैसे यह विकार मस्तिष्क में न्यूरोट्रांसमीटर्स के असंतुलन के कारण या उनके ठीक तरह से कार्य न कर पाने के कारण भी होता है। ऐसा भी देखा गया है कि जो बच्चे अविकसित या कम वजन के साथ पैदा होते हैं या जिन बच्चों को मिर्गी (एपीलेप्सी) के दौरे पड़ते हैं, उन्हें भी यह दिक्कत अधिक होती है। मस्तिष्क में किसी कारण से क्षति होने या मस्तिष्क में चोट (चाहे गर्भावस्था में या पैदा होने के बाद) लगने वाले बच्चों में इस विकार के होने की आशंका ज्यादा होती है।

बच्चों में इस विकार की पहचान बाल मनोचिकित्सक या बाल रोग विशेषज्ञ ही कर पाते हैं। कभी-कभी ऐसे बच्चे माता-पिता के लिए बहुत परेशानी का कारण बन जाते हैं। किशोरों में इस विकार से पीड़ित होने पर सड़क दुर्घटना में घायल होने की प्रवृत्ति ज्यादा रहती है। यह विकार लोगों को इतना सामान्य प्रतीत होता है कि इसकी पहचान मुश्किल से तब हो पाती है, जब इस विकार के लक्षण बहुत बढ़ जाते हैं और कई तरह की समस्याएँ पैदा करने लगते हैं। इस विकार के जटिल होने पर बच्चों या किशोरों को अपनी पढ़ाई भी छोड़नी पड़ सकती है। इस विकार से ग्रसित वयस्कों की मानसिक क्षमताएँ कमजोर हो जाती हैं। इस विकार से ग्रसित कई लोग शराब या अन्य नशीली वस्तुओं का उपयोग करने लगते हैं, जिससे उनकी सामाजिक छवि भी खराब होने लगती है।

इस विकार के उपचार के लिए परामर्श, जीवनशैली में बदलाव व दवाओं का प्रयोग किया जाता है। जिन बच्चों में इसके लक्षण गंभीर होते हैं, उनमें दवाओं के द्वारा ही शुरुआती उपचार किया जाता है तथा किशोरों व वयस्कों में भी उपचार का यही तरीका अपनाया जाता है।

ध्यान अभाव अतिसक्रियता मनोविकार में चूँकि ध्यान का अभाव होता है और व्यक्ति में अतिसक्रियता होती है, वह एक जगह पर स्थिर नहीं रह पाता लेकिन यदि इस विकार से ग्रसित व्यक्ति योगासनों का नियमित अभ्यास करे और धीरे-धीरे प्राणायाम का अभ्यास करते हुए ध्यान करने की कोशिश करे, तो उसे इस मनोविकार को नियंत्रित करने व ठीक करने में लाभ मिल सकता है।

इसके अलावा इस मनोविकार से ग्रसित बच्चों व किशोरों को मंत्रों का उच्चारण सिखाना चाहिए, क्योंकि मंत्रों के उच्चारण मात्र से हमारे मस्तिष्क में ऐसी ऊर्जा का प्रवाह होता है, जो हमारे ध्यान को एकाग्र करने में सहायक होती है। देखा गया है कि गायत्री मंत्र की नियमित उपासना ऐसे में अत्यन्त प्रभावी परिणाम ले करके आती है। इसके अतिरिक्त बच्चों व किशोरों को सरल स्तुतियाँ, स्तोत्र, श्रीरामचरितमानस की चौपाईयाँ आदि भी सिखायी जा सकती हैं, क्योंकि इन सबमें देवी-देवताओं की सूक्ष्म ऊर्जा का निवास होता है, जो हमारे मनोविकारों को दूर करती है, हमारे आत्मविश्वास को बढ़ाती है और हमें प्राणऊर्जा से भरपूर करती है।

ध्यान अभाव अतिसक्रियता विकार के लक्षण यदि किसी में दिखें तो उसे ऐसे कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जिनको करने के लिए शारीरिक व मानसिक गतिविधियों की जरूरत हो और उस कार्य में उसकी रुचि भी हो। इसके साथ ही उसकी काउंसलिंग करना भी जरूरी है, उसके मन की बात समझना जरूरी है, क्योंकि जब मनोग्रंथियाँ खुलती हैं, तो व्यक्ति उन्मुक्त होकर अपना कार्य कर पाता है और अपने मन को एकाग्र करने की कला भी सीख पाता है। ❑

एक व्यक्ति बाण बनाने की कला में पारंगत था। उसके बनाए बाण अद्भुत होते थे। इस कला को सीखने एक लुहार भी उसके पास पहुँचा। उसने पास बैठकर गौरता से उसकी कार्य पद्धति देखने के लिए कहा। एक बारात सामने की सड़क से गाजे-बाजे के साथ निकली। लुहार ने उसका विवरण उस व्यक्ति को सुनाया। बाण बनाने वाले ने कहा- 'न तब मुझे देखने की फुरसत थी और न अब सुनने की। समग्र तत्परता और अभिरुचि के साथ काम करना, यही उसे अद्भुत बना लेने का रहस्य है।' सीखने वाला समझ गया और एकाग्रता का अयास करने लगा। जितनी सफलती मिली उतने ही उत्तम बाण बनने लगा। वस्तुतः यही आदर्श हर विद्याव्यसनी पर भी लागू होता है। शिक्षण हेतु सूत्र कहीं से भी मिलें उसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

आलस्य की महाव्याधि से कुछ ऐसे निपटें

मनुष्य जीवन अनेक महती संभावनाओं से भरा हुआ है, लेकिन बहुत ही कम लोग इनको समुचित दृष्टि से साकार कर पाते हैं। अधिकांशत: प्रतिभा एवं योग्यता होने के बावजूद आधे-अधूरे जीवन जीने के लिए अभिशप्त होते हैं व जीवन, बिना किसी सार्थक आंतरिक-बाह्य उपलब्धि एवं निष्कर्ष के ऐसे ही बीत जाता है। इस त्रासदी का मुख्य कारण रहता है- आलस्य, जिसे मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु की संज्ञा दी गई है।

आलस्य जड़ता एवं बेहोशी का प्रतीक है, जो व्यक्ति को वर्तमान में नहीं जीने देता। इसके आगोश में व्यक्ति या तो बीती यादों की खुमारी में डुबा रहता है या भविष्य के कोरे स्वप्नों में खोया रहता है। वह कुछ करना नहीं चाहता। बाहर से देखने पर वह निश्चिंत, निर्द्वन्द्व दिख सकता है, लेकिन अंदर से वह इस अवस्था की स्थिरता, शांति एवं चैतन्यता से वंचित होता है। आलस में विघ्न एक आलसी को खलल जैसा प्रतीत होता है। अपनी इच्छा से वह आलस्य से बाहर नहीं निकलना चाहता।

ऐसे में आलसी उस पुरुषार्थ से वंचित रह जाता है, जो जाग्रत संकल्प से उद्भूत होता है, जो चुनौतियों को अवसर में बदलने का साहस रखता है। जो विषम परिस्थितियों के बीच भी अपना लक्ष्य सिद्ध करना जानता है। आलसी में उस जागरुकता का अभाव रहता है, जो सामने आ रहे अवसरों को समझ सके। आगे बढ़ने के मौके सामने आते रहते हैं, लेकिन आलसी मूक दर्शक बनकर इनका लाभ उठाने से चूक जाता है। इस तरह आलस्य की जड़ता में व्यक्ति आंतरिक और बाहरी संभावनाओं को साकार नहीं कर पाता।

आलस्य के कई कारण हो सकते हैं- १. बहुत ज्यादा शारीरिक श्रम २. मानसिक श्रम से उपजी हुई थकान ३. इंद्रिय असंयम ४. स्वभावगत आलस्य आदि। इनमें से पहले दो कारण तो परिस्थितिजन्य हैं, जिनसे हुए ऊर्जा-क्षय की उचित विश्राम, निंद्रा एवं आहार-विहार के साथ भरपाई हो जाती है, जिसके बाद फिर व्यक्ति आलस्य से उबर जाता है और अपने कार्य में सक्रिय हो जाता है। तीसरा कारण व्यक्ति की बिगड़ी आदतों से जुड़ा है, जिन्हें सुधार कर ही ठीक किया जा सकता है। सबसे अधिक घातक होता है स्वभावगत आलस, जिससे उबरना अत्यन्त कठिन होता, लेकिन असंभव नहीं।

आलस्य से निपटने के लिए विभिन्न स्तरों पर निम्न तरीकों को अपनाने का क्रम कुछ इस तरह बनाया जा सकता है-

१. हल्का आहार लें- भारी आहार आलस्य का प्रमुख कारण रहता है। कहावत भी है कि पेट भारी तो मन भारी। ऐसे में ३-४ घंटों के अंतराल में अपनी स्थिति के अनुरूप हल्का आहार लिया जा सकता है। स्वल्पाहार जहाँ पेट को हल्का रखता है, वहीं इससे प्राप्त ऊर्जा व्यक्ति को सक्रिय रखती है।

२. चहलकदमी करें- जब काम करते-करते थक जाऐं या आलस्य हावी होने लगे, तो उठकर टहलना आलस्य दूर करने में सहायक होता है। १०-१५ मिनट टहलना थकान को मिटाते हुए नवीन ऊर्जा का संचार करता है। साथ ही गहरी श्वांस लेने का अभ्यास भी किया जा सकता है।

३. पर्याप्त नींद लें- नींद का पूरा न होना भी आलस्य का एक कारण बनता है। अत: गहरी नींद व्यक्ति को तरोताजा बनाए रखती है व आलस्य का कारण निरस्त हो जाता है। अत: समय पर सोऐं व जागें, दिन में न सोऐं। नींद से पहले विश्राम कर शांतिपूर्वक सोने जाऐं।

४. भरपूर पानी पीऐं- पानी की कमी (डिहाइड्रेशन) भी आलस्य का कारण बन सकती है। ऐसे में नियमित अंतराल पर जल लेते रहें तथा दिनभर में जल की पर्याप्त मात्रा लें, जिससे कि शरीर के विजातीय तत्वों का शोधन होता रहे व व्यक्ति तरोताजा अनुभव करे।

५. दिनचर्या रखें संयमित-संतुलित- असंयमित व

असंतुलित दिनचर्या आलस्य का एक प्रमुख कारण है, क्योंकि इससे शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा का क्षय होता है। अत: दिनचर्या को संयमित व संतुलित रखकर हम थकान से बखूबी निपट सकते हैं।

६. ताजगी के छोटे-छोटे प्रयोग- सुबह बिस्तर से उठकर मॉर्निंग वॉक करें। मौसम को देखते हुए ठंडे जल से स्नान कर सकते हैं। आँखों पर ठंडे पानी के छींटे बहुत सहायक होते हैं। मौसम के अनुरूप ताजगीवर्धक गर्म या ठंडे पेय का सेवन भी किया जा सकता है।

७. तनाव का सामना करें- तनाव के कारण भी ऊर्जा का भारी क्षय होता है। ऐसे में हल्की-फुल्की गतिविधियों में शामिल रहकर इससे निपट सकते हैं। नियमित योग का अभ्यास कर सकते हैं। मधुर संगीत का श्रवण व मित्रों का संग-साथ भी बहुत सहायक रहता है।

८. श्रम की अति से बचें, कार्य को टुकड़ों में बाँटें- जहाँ तक संभव हो कार्य करने का संतुलित तरीका अपनाऐं। कार्य को बोझ की तरह करने की बजाए व्यवस्थित तरीके से करें। बड़े कार्य को टुकड़ों में बाँटकर बीच-बीच में विश्राम भी लें। साथ ही कार्य को बदलें व इसमें नयापन लाते रहें।

९. लक्ष्य में रुचि रखें, मनपसंद कार्य करते रहें- आलस्य का एक अहम कारण कार्य के प्रति अरुचि भी है। रुचि न होने के कारण व्यक्ति कार्य में टालमटोल करता रहता है, जो आलस्य का एक बड़ा कारण बनता है। अत: रुचिकर लक्ष्य को हाथ में लें, या कार्य को रोचक बनाऐं। आप देखेंगे कि आलस्य कैसे विदा हो जाता है।

इस तरह व्यक्ति अपनी स्थिति के अनुरूप रणनीति बनाकर आलस्यरूपी महाव्याधि से निपट सकता है। ❑

मानवी गरिमा पर प्रकाश डालते हुए मानसकार ने राम के चरित्र के माध्यम से बड़ी अच्छी व्याया की है। नागरिक कर्त्तव्यों का पालन तो उतना भर है कि हम अपने उत्तरदायित्व को निबाहें और दूसरों के अधिकारों का व्यतिक्रम न करें, पर सज्जनों की शालीनता इससे भी आगे बढ़ जाती है। वे अपने उदार व्यवहार से दूसरों के सामने आदर्श उपस्थित करते हैं और अनुकरण की प्रेरणा देते हैं। मनुष्यता का गौरव बढ़ाने वाले विभूतियों को समाज का ऋण और अमानत मानते हैं और उसका सदुपयोग लोकमंगल के लिए करते हैं- कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई॥

कीर्ति (प्रभाव), कविता (साहित्य) और सपत्ति वही श्रेष्ठ है जो गंगाजी की तरह सबका भला कर सके अर्थात् जो विभूतियाँ लोकहित में न लगे सकें वे निकृष्ट हैं। विभूतिवालों को जो विशेषताएँ ईश्वर ने दी हैं उन्हें भगवान की धरोहर मानकर लोककल्याण में ही उनका प्रयोग करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक मात्रा में जमा सपत्ति का यही सदुपयोग है कि उसे जल्दी सत्प्रयोजनों के लिए वितरित कर दिया जाये। रावण ने प्रचुर सपत्ति जमा कर रखी थी। सिंहासनारूढ़ होने पर वह विभीषण को मिली। इस संचय के धन का क्या किया जाए? यह बात उन्होंने श्रीराम से पूछी। राम ने उसे तुरन्त वितरण करके संग्रह के पाप का तत्काल प्रायश्चित करने की सलाह दी। तदनुसार वह सपदा आवश्यकता वाले लोगों एवं कार्यों के लिए अविलब दे दी गई।

वर्तमान

वर्तमान समय अनमोल है, वर्तमान समय ही यथार्थ है। वर्तमान समय ही कर्म का आधार है। वर्तमान समय ही एकमात्र हमारे साथ है, वर्तमान समय ही भविष्य का जन्मदाता है और अतीत के कारण उपस्थित है। इसलिए वर्तमान समय बहुत खास है और जो इस वर्तमान समय में रहता है, जो इस वर्तमान के क्षणों का महत्त्व समझता है, वह वर्तमान की अमूल्यता को अनुभव कर लेता है।

कालगणना की सुविधा की दृष्टि से हम समय को मुख्यत: तीन भागों में बाँटकर देखते हैं- अतीत, वर्तमान और भविष्य। अतीत और भविष्य के दिनों के लिए एक ही शब्द 'कल' का उपयोग किया जाता है अर्थात् अतीत और भविष्य दोनों अलग-अलग नहीं बल्कि लगभग एक हैं। दोनों का मूल तत्व एक ही है, फर्क केवल स्थान का है कि एक हो चुका है और दूसरा होने वाला है। ये दोनों अर्थात् अतीत और भविष्य, एक दूसरे से इतनी निकटता से किसी गाँठ की तरह बँधे हुए हैं कि ये अलग-अलग होकर भी एक ही हैं।

अतीत, वर्तमान और भविष्य- इन तीनों में मुख्य कौन है ? तो वह है- वर्तमान। यह वर्तमान का क्षण ही अतीत और भविष्य का जन्मदाता है। बीता हुआ कल भी कभी वर्तमान था और जो आने वाला कल है, वह भी वर्तमान के स्पर्श करने के बाद अतीत बन जाएगा अर्थात् वर्तमान ही अतीत और भविष्य की विभाजन रेखा है, जिसके एक तरफ अतीत है और दूसरी तरफ भविष्य है।

वर्तमान के अति निकट होते हुए भी हम अतीत में कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सकते, क्योंकि वह समय हमारे हाथों से निकल चुका है। अतीत के समय में हम तभी कुछ कर सकते थे, जब वह वर्तमान के धरातल पर था अर्थात् वह समय हमारे हाथों में था। वास्तव में हमारा सारा अतीत हमारे अपने सारे वर्तमान का ही तो संचयन है। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि हमारा अतीत सुखद बने, तो यह केवल अपने वर्तमान के प्रत्येक पल को सुखद बनाकर ही किया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक गुजरता हुआ पल तत्काल अतीत में तब्दील होता रहता है। जिसे हम अपनी स्मृति कहते हैं, वह हमारा अतीत है, जो हमारे मस्तिष्क में दर्ज है, जिसे हम जब-तब याद करके फिर से जीने की कोशिश करते हैं। इसलिए यदि हमारी यादें अच्छी हैं, जो हमारा जीवन भी निश्चित रूप से अच्छा होगा।

अतीत, वर्तमान के बाद फिर भविष्य की बारी आती है। भविष्य का यथार्थ यह है कि यह अभी आया नहीं है, लेकिन आएगा। अतीत को चूँकि हमने ही बनाया है, हमारे ही कर्मों ने उसे आकार दिया है, इसलिए वहाँ सब कुछ यथार्थ में घटित हुआ है, लेकिन भविष्य के साथ ऐसा कुछ नहीं है। भविष्य के बारे में जो कुछ भी है, वह सब काल्पनिक है। भविष्य के बारे में हमारी जो भी सोच है, वह सब मन की रंगीन तरंगें हैं, या आशंकाओं के उलझे-सुलझे विचार हैं। भविष्य के बारे में हम तब तक कुछ नहीं कर सकते, जब तक कि भविष्य के क्षण वर्तमान के क्षणों में परिवर्तित नहीं हो जाते।

हाँ, भविष्य के बारे में इतना जरूर है कि वर्तमान में हम जो कुछ भी कर रहे होते हैं, वह सब भविष्य के लिए ही कर रहे होते हैं, इसलिए मनोवांछित भविष्य को यथार्थ में बदलने के लिए हम वर्तमान पर लगातार हस्तक्षेप करते रहते हैं, ताकि हम जैसा चाहते हैं, वैसा भविष्य हमें मिल सके लेकिन कई कोशिशों के बावजूद कभी-कभी हमारा भविष्य हमारी मर्जी के अनुसार नहीं होता। हमें तब भी उसे स्वीकारना पड़ता है क्योंकि भविष्य की नींव केवल हमारा वर्तमान ही निर्धारित नहीं करता, बल्कि अतीत भी निर्धारित करता है।

अतीत में किए जाने वाले हमारे शुभ व अशुभ कर्म हमारे शुभ व अशुभ भविष्य का निर्धारण करते हैं और यही कारण है कि कभी-कभी वर्तमान में अथक प्रयास करने के बावजूद हम मनोवांछित भविष्य नहीं प्राप्त कर पाते, क्योंकि अतीत के कर्म भी हमारे भविष्य को आकार देते हैं।

चूँकि हमारे ही कर्म हमारा अतीत बनते हैं और हमारे भविष्य का निर्धारण भी वे ही करते हैं,

इसलिए गीता में बहुत ही उत्तम वचन कहा गया है- **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** अर्थात् कर्म करने पर ही मनुष्य का अधिकार है, उसके फलों पर कभी नहीं और यह कर्म केवल वर्तमान में ही संभव है। अर्थात् वर्तमान समय में ही मनुष्य को अपने कर्म करने का अधिकार है, न अतीत पर और न ही भविष्य पर उसका किंचित भी अतिक्रमण है। अत: वर्तमान में रहना ही वास्तव में जीवन को जीना है।

दुर्भाग्यवश होता यह है कि वर्तमान समय में जीते हुए भी हम या तो अतीत की यादों में खो जाते हैं या फिर भविष्य की कल्पनाएँ हमारे मन को बहका लेती हैं। इस तरह हम वर्तमान में रह करके भी वर्तमान में अपने मन से पूरी तरह से जुड़े नहीं रह पाते, वर्तमान के क्षणों को हम पूरी तरह से नहीं जी पाते और न ही वर्तमान के क्षणों का पूरा सदुपयोग कर पाते हैं।

अधिकतर समय हम या तो अतीत की गलतियों या शाबाशियों को याद करते रहते हैं, उसमें या तो दु:ख या खुशी अनुभव करते हैं या फिर भविष्य के लिए सुन्दर कल्पनाओं का हवामहल तैयार करते रहते हैं, जिनका कोई आधार नहीं होता, जिन तक पहुँचने के लिए हमारे पास कोई सही रास्ता नहीं होता। यही कारण है कि हमारा भविष्य का हवामहल, भविष्य की हवाओं में ही कहीं गुम हो जाता है, यथार्थ के धरातल पर उतर ही नहीं पाता।

यदि हम अपने वर्तमान समय पर ध्यान दें, उसमें अपने मन को लगाएँ, अतीत की यादों और भविष्य की कल्पनाओं में अधिक समय न गँवाऐं तो निश्चित रूप से हमारा वर्तमान ही हमें हमारे इच्छित भविष्य की ओर ले जा सकता है। जब हम वर्तमान समय की बात करते हैं, तो उसका स्वरूप लंबाई या चौड़ाई में नहीं होता, वह तो एक छोटे बिन्दु से भी छोटा होता है, लेकिन इसकी गहराई हमारे अनुमान से भी परे होती है।

इसलिए वर्तमान को यदि जीना है, तो इसकी गहराई में उतरकर ही इसे जीना संभव हो पाता है। इसे ही 'ध्यान' कहा गया है। ध्यान यानि हमारे विचारों का एक बिन्दु विशेष पर टिक जाना। विचारों के रुकते ही हमारे चेतना में जीवन-ऊर्जा का संचयन होने लगता है। ऊर्जा की यही अधिकता व सघनता हमें वर्तमान की गहराई की यात्रा पर ले जाती है। वर्तमान का यह अनुभव विचारों के द्वारा संभव नहीं हो सकता। इसके लिए उच्चस्तरीय संवेदनशीलता की जरूरत होती है और हम अपने मन को हृदय में विलीन करके इस संवदेनशीलता को प्राप्त कर सकते हैं।

हमारी हर वो श्वास जिसे हम पूरे होशोहवास में ले रहे हैं और उसे छोड़ रहे हैं, वह हमें हमारे वर्तमान का एहसास कराती है। वर्तमान के एहसास के साथ, उसकी गहराई में जाना और उसे जीना ही वर्तमान के क्षणों को वास्तव में जीना है, जो हमारे अतीत और भविष्य दोनों को उत्तम बनाता है। एक सुखी एवं सफल जीवन को जीने का यही सूत्र है। ❑

एक धनी व्यक्ति बहुत कंजूस था। उसने घर की स्त्रियों को भी कुछ दान देने से मना कर रखा था। एक दिन एक भिखारी उसके यहाँ भीख माँगने आया तो धनिक की नवविवाहिता पुत्रवधू भिखारी से बोली, हमारे यहाँ तुहें देने के लिए कुछ नहीं है। भिखारी बोला, फिर तुम लोग क्या खाते हो? वह बोली- हम बासी खाना खाते हैं जब ये भी समाप्त हो जायेगा तो हम भी तुहारी तरह भीख माँगेंगे।

सेठ ऊपर बैठा भिखारी व पुत्रवधू की बातें सुन रहा था। उसने अपनी पुत्रवधू से कहा कि तुम यह क्या कह रही हो कि हम भी भीख माँगेगे। पुत्रवधू बोली- पिताजी हमारे पास अभी जो भी धन है उसे हमने पिछले जन्म में किये गये परमार्थ कार्यों के पुण्यस्वरूप पाया है परन्तु अब हम परमार्थरूपी पुण्य कार्य नहीं कर रहे हैं इसलिए पिछला पुण्य समाप्त होते ही हमें भीख माँगनी पड़ेगी। सेठ को अपनी भूल का भान हुआ और उसका जीवन बदल गया।

स्व की ओर जाने की साधना है जीवन साधना

जीवन वह है जो हमें जीने के लिए मिला है लेकिन सही अर्थों में जीवन जीना अपने आप में खास बात है। जीवन में सफल होना, अपने जीवन को सार्थक बनाना, जीवन को एक विशेष अर्थ प्रदान करता है। जीवन तो सभी जीते हैं, लेकिन कुछ लोगों का जीवन इतना विशेष होता है कि वह दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है।

सभी के पास जीने के लिए एक ही जीवन होता है, लेकिन सभी के लिए इस जीवन के मायने अलग-अलग होते हैं। वास्तव में जीवन अनेक चरित्रों को एक साथ निभाने का नाम है। जीवन की शुरुआत किसी परिवार में ही होती है और परिवार में रिश्ते-नाते होते हैं, जो एक-दूसरे से जुड़े होते हैं, कोई रिश्ते गहराई से जुड़े होते हैं तो किन्हीं रिश्तों में दूरियाँ होती हैं। रिश्तों को समझते हुए, इन्हें निभाते हुए, नए रिश्तों से जुड़ते हुए ही व्यक्ति का पारिवारिक व सामाजिक दायरा विकसित होता है और इसके साथ उसका व्यक्तित्व भी एक नया आयाम लेता है।

व्यक्ति यदि घर में पारिवारिक रिश्तों से जुड़ा हुआ है, तो घर के बाहर सामाजिक संबंध उसके सामने खड़े हो जाते हैं। इन संबंधों में जन्म लेती उसकी आकांक्षाएँ उसे दिन-रात व्यस्त रखती हैं। मनुष्य के जीवन का एक बड़ा भाग उससे की जाने वाली अपेक्षाओं व आकांक्षाओं की पूर्ति में ही व्यय हो जाता है और फिर उसे लगता है कि यही उसका जीवन है।

संबंधों का मोह उसे भ्रम के संसार में ले जाता है। वह दूसरों की इच्छाओं की पूर्ति के लिए सदा यत्नशील रहता है। उसे अपने तन के भीतर का स्व दिखाई ही नहीं देता और अपने जीवन में वह अपने संबंधों के पोषण के लिए अनेक गलत कर्म भी कर गुजरता है।

जीवन में जब उसके शुभ कर्मों का शुभ फल आता है, यानि जब उसे अपने जीवन में बड़ी सफलता, धन लाभ, यश आदि की प्राप्ति होती है, तो प्राय: सभी लोग उसके सुख में शामिल होते हैं, उसके साथ आनन्द मनाते हैं लेकिन जब उसके अशुभ कर्मों का फल उसके समक्ष आता है, तो फिर उसे भोगने के लिए कोई उसके साथ खड़ा नहीं होता और उसे यह अकेले ही भोगना पड़ता है। यह अशुभ फल- गंभीर बीमारी, गंभीर आरोप, अपयश, अपमान आदि के रूप में हो सकता है।

मनुष्य समाज में रहकर ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी व संन्यासी का जीवन जीता है। इस तरह मनुष्य समाज में रहकर चाहे किसी भी तरह का जीवन जिए, यदि वह अपने जीवन में स्व की ओर कदम बढ़ाता है, तभी उसका जीवन सार्थक होता है।

वास्तव में जीवन जीना एक कठिन साधना है। जीवन में संबंधों के प्रति संवेदनशील रहना भी आवश्यक है और इसके साथ आत्मिक उन्नयन की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मनुष्य जब तक अपने आत्म तत्व से जुड़ा हुआ है तभी तक वह जीवन में उपलब्धियाँ अर्जित करने योग्य है। यदि वह अपने अंतर्मन के प्रति निष्ठावान होगा, तो उसके कर्म भी श्रेष्ठ होंगे और वह अपने परिवार व समाज को श्रेष्ठ फल दे सकेगा।

मनुष्य जितना श्रम अपने जीवनव्यापन के लिए करता है, उससे अधिक यत्न उसे अपने अन्तर्शुद्धि के लिए करना चाहिए क्योंकि यदि अन्तर निर्मल होगा, तभी सभी मानवीय गुण उसमें समा सकेंगे, अन्यथा अन्तर की विकृतियाँ उसके बाहरी जीवन को भी दूषित करेंगी, इससे उसके कर्म भी अशुभ होंगे। जब मनुष्य में संयम, संतोष, सहजता, दया, करुणा, प्रेम जैसे गुण अपना स्थान बनाते हैं, तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे अवगुण स्वयं अपना स्थान त्याग देते हैं। इसलिए हमें सद्गुणों को अपनाना चाहिए और दुर्गुणों को त्यागने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

वास्तव में अन्तर्शुद्धि के लिए किए जाने वाले सभी प्रयास साधना के अन्तर्गत आते हैं। यह साधना ही मनुष्य को सिद्धि की ओर ले जाती है अर्थात् उसके जीवन को परम सार्थक बनाती है। अन्तर्शुद्धि के लिए किए जाने वाले प्रयास व संघर्ष उसके जीवन को एक नवीन अर्थ व संतोष प्रदान करते हैं और अन्तर्शुद्धि की डगर पर आगे बढ़ने की दिशा में किए जाने वाले शुभ

कर्म स्वत: ही विभिन्न विभूतियों से विभूषित करते हैं।

यदि व्यक्ति इन विभूतियों को ही अपना लक्ष्य समझ बैठता है तो वह इन्हीं में अटक कर रह जाता है, आगे नहीं बढ़ पाता, लेकिन यदि वह इन विभूतियों में न उलझकर आगे बढ़ता है, तो अपने ध्येय 'स्व' तक पहुँच जाता है।

स्व यानि स्वयं। स्व से दूरी ही हमें दीन-दुर्बल बना देती है, हमारी ओजस्विता-तेजस्विता को छीन लेती है। जितना हम स्व से दूर होते हैं, उतना ही हम असंतुष्ट, बेचैन व परेशान होते हैं और जितना हम स्व के नजदीक होते हैं, उतना ही हम परम सन्तुष्ट, आनन्दमय व निश्चिन्त होते हैं।

स्व से दूरी ही हमें अशुद्धियों व भ्रमों से भर देती है और जीवन में किए जाने वाले अशुभ कर्म ही हमें स्व से दूर करते चले जाते हैं और इसके कारण हम भ्रम व सांसारिक उलझनों में उलझ जाते हैं जबकि स्व की ओर कदम बढ़ाने व अन्तर्शुद्धि के लिए प्रयासरत होने के साथ ही हमारी दुर्बलताएँ, दुष्प्रवृत्तियाँ व अशुद्धियाँ हमसे दूर होती हुई चली जाती हैं।

स्व की ओर जाने की साधना एक तरह से परमात्मा की साधना है, स्व की ओर जाने की साधना ही सही अर्थों में जीवन साधना है। हम अपने स्व से इतने दूर चले गए हैं कि हमें उसका अहसास भी नहीं होता, जबकि स्व हमारे भीतर ही मौजूद है, उससे हम अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, लेकिन फिर भी हम उससे परिचित नहीं हैं। इस तरह से देखा जाए तो जीवन में हमें जिसे पाना है, जिसे खोजना है, वह हमारे भीतर ही है, लेकिन फिर भी हम उसकी खोज संसार में करते हैं, उसे बाहर खोजते हैं, बाहर तलाशते हैं और न मिलने पर परेशान होते हैं।

जिसने बहुत सारी सांसारिक उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, बहुत यश प्राप्त किया, बहुत सफलताएँ प्राप्त कीं, लेकिन यदि उसे स्व की प्राप्ति न हुई, तो उसका जीवन सही मायने में सफल व सार्थक न हुआ लेकिन जिसने स्व को प्राप्त कर लिया, फिर भले ही उसने सांसारिक उपलब्धियाँ व बाहरी सफलताएँ न पायीं हों, वह अपने जीवन से परम सन्तुष्ट होगा और आनन्दित होगा।

मनुष्य जीवन परम अनमोल है, क्योंकि इस जीवन में कर्म करने की स्वतंत्रता है, यदि व्यक्ति कर्म के रहस्य को समझ ले, उसे अपने जीवन में सार्थक करे, तो इसके सहारे ही वह अपने स्व तक पहुँच सकता है।

मनुष्य के लिए जितना कर्त्तव्य अपने परिवार, समाज के लिए प्रति है, उतना ही स्वयं के प्रति भी है और इनके समन्वय के साथ ही उसे जीवन में आगे बढ़ना चाहिए लेकिन अपने स्व को विस्मृत नहीं करना चाहिए, बल्कि इसकी ओर बढ़ना चाहिए क्योंकि स्व की प्राप्ति ही जीवन साधना है।

❑

एक शिकारी ने हाथी का शिकार किया और उसके दांत निकाल लिए। इतने में एक सर्प निकला, उसने शिकारी को काट खाया, वह गिर पड़ा। हाथी के मरने से एक खरगोश का कचूमर पहले ही निकल चुका था। एक सियार उधर से निकला तो इतने शिकार एक साथ पड़े देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। महीनों के लिए भोजन मिल गया। उसने शिकारी का धनुष पड़ा देखा उसमें ताँत की प्रत्यंचा लग रही थी। पहले इस छोटी खुराक को खत्म कर लें तब बड़ों पर हाथ डालेंगे यह सोचकर उसने ताँत को जैसे ही चबाया वैसे ही वह टूटी और धनुष का सिरा उसके मुँह में जोर से लगा और वह वहीं ढेर हो गया। वास्तव में लालची और अदूरदर्शी- इसी प्रकार शहद के लोभ में जान गँवा बैठने वाली मक्खी की तरह जोखिम उठाते हैं।

श्रीरामचरितमानस में चरित्र की शिक्षा

श्रीरामचरितमानस गुणों की खान है। इसमें जीवन जीने की शिक्षा समाहित है। गुरु वशिष्ठ ने भगवान श्रीराम को कठिन समय में जीवन जीने की शिक्षा दी थी। चित्रकूट में एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते समय भगवान राम पर परिवार, समाज और जनकराज का बड़ा दबाव पड़ा कि वे अयोध्या लौट चलें। रामायण में राम के बाद फिर भरतजी का ही चरित्र सबसे ऊँचा माना गया है। वह तो आए ही इसीलिए थे। अब अन्तिम निर्णय राम को लेना था, मगर इससे पहले कि भगवान कोई निर्णय लें गुरु वशिष्ठ जी बोले-

भरत विनय सादर सुनिय करिय विचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥

जब लोग इस दोहे को समझ कर प्रयोग करेंगे तो मानवोदय सर्वोदय तक पहुँचेगा। सारा सोना न्यौछावर कर दिया जाए, तब भी इस दोहे के बराबर नहीं होगा। किसी भी बात का निर्णय करने में रजोगुण और तमोगुण विकल्प पैदा करते हैं, मगर सतोगुण सही निर्णय लेने या करने में सहायता पहुँचाता है। भगवान राम ने सब प्रकार से विचार करके भरत को अयोध्या लौट जाने का संकेत दिया और मधुर वचन बोले-भरत! यद्यपि तुम सब प्रकार से योग्य हो, मगर मुनि, माता, सचिव और स्वामी की सीख लेकर ही कार्य करना। देश, राजकोष, परिवार, पृथ्वी, प्रजा और राजधानी की रक्षा करना तुम्हारा उत्तरदायित्व है। भरत जी की विदाई के समय का एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है-

मुखिया मुख सों चाहिए खानपान में एक।
लइ पोषइसकल तन तुलसी सहित विवेक॥

इस विचार की पुष्टि के लिए यह चौपाई भी बहुत महत्त्वपूर्ण है-

राजधरम सरबस इतनोई।
जिमि मन माहिं मनोरथ गोई॥

रामायण के चरित्र निर्माण की शिक्षा एक-एक चौपाई और दोहे में मिलती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस ग्रन्थ की रचना इसी उद्देश्य से की है। बाद में भगवान श्रीरामचन्द्र जी अयोध्या में सीधे अपने भक्तों से मिलते हैं और उनके कल्याण के लिए शिक्षा देते हैं। भगवान को चौदह वर्ष का वनवास मिला था, जिसके बारह वर्ष उन्होंने चित्रकूट में बिताए थे।

बाकी के दो वर्ष यहाँ विश्राम नहीं करेंगे, ऐसा निश्चय करके भगवान राम, सीता माता के साथ अत्रि मुनि के आश्रम गए और उनसे विदा माँगी। इस अवसर पर मुनि-पत्नी सती अनुसुइया जी ने सीता जी को आदर्श पतिव्रता नारी का सम्मान देकर जो कुछ संदेश दिया, वह सारे संसार की स्त्रियों के लिए है। अनुसुइया जी का यह संवाद ऐसा लगता है जैसे कोई महिला मनोविज्ञान की विशेषज्ञ बोल रही हों। इस संवाद का अन्त इस चौपाई से हुआ-

धीरज धर्म मित्र अरु नार॥
आपदकाल परिखिअहिं चारी॥

व्यवहारिक जीवन की शिक्षा और विपत्ति के आने पर उसकी परीक्षा का सूत्र वचन कहकर अनुसुइया जी ने सीताजी को अपने आश्रम से विदा किया। चित्रकूट छोड़ते ही रामजी ने आराम त्याग दिया, जंगल-जंगल घूमते रहे, फिर दण्डकारण्य में पर्णकुटी बनाई गई, शेष समय के लिए वही उनका निवास हो गया। वहाँ दो घटनाएँ घटीं- एक दिन उन्होंने कुटी के बाहर देखा कि हड्डियों का ढेर लगा है, तो पूछा यह क्या है? एक ऋषि ने बताया कि मानवभक्षी निशाचर यहाँ तपस्वियों को मारकर खा जाते हैँ, यह ढेर उन्हीं की हड्डियों का है। ऐसा हृदयविदारक दृश्य राम ने पहले कभी नहीं देखा था। इसे देखकर उनकी भुजाएँ फड़क उठीं और उन्होंने प्रतिज्ञा कर डाली-

निसिचर हीन करहुं महि।
भुज उठाय प्रण कीन्ह॥

दूसरी घटना जब सीताहरण की हुई तो विशालबाहु राम अपने अवतारी रूप में आ गए और तब ईश्वरीय विधान से सब कुछ होने लगा। नैतिक शिक्षा के तीन रूप हैं- चरित्र निर्माण, चरित्र का विकास और चरित्र का सुधार। लंका में रावण के चरित्र को सुधारने के बहुत प्रयत्न हुए हैं। सबसे अधिक प्रयत्न उनकी पतिव्रता पत्नी ने किया। यहाँ तक कह दिया कि- हे नाथ! मेरे सुहाग

की रक्षा करो, वह जानती थी कि रावण की मृत्यु निश्चित है। दूसरा प्रयत्न रावण के पुत्र प्रहस्त ने किया, वह जवान था। इसलिए जोश में आकर बहुत तीखे शब्द कह गया। तीसरा प्रयास भाई विभीषण ने किया, वह भाई ही नहीं रावण के शुभचिन्तक भी थे। उन्होंने रावण के चरण पकड़कर समझाया कि आप श्रीराम से बैर न बाँधिये। आदरसहित सीता जी को लौटा दीजिए। चरित्र सुधार के तीनों प्रयत्न असफल हो गए मगर एक बात विचारणीय है कि लंका में भी यहाँ तक कि रावण के परिवार में भी तीन सतोगुणी, विवेकी और रामभक्त थे। अहंकारी रावण का चरित्र क्यों नहीं सुधरा क्योंकि उसके अन्य चाटुकार मंत्रियों ने भर रखा था कि तुम परमविजेता हो, ये रीछ-वानर हमारा भोजन बनकर यहाँ आ रहे हैं। रामचरितमानस में इसका चित्रण मिलता है-

सचिव वैद गुरु तीनि जो,
प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर,
होइ बेगि ही नास॥

विभीषण ने रावण द्वारा दी गयी शारीरिक यातना को सह लिया, मगर अपने स्वाभिमान की चोट वे नहीं सह पाये और श्रीराम के चरणों का ध्यान करते हुए समुद्र के उस पार रामदल में पहुँच गए। इनके आने में एक और विशेषता थी कि अकेले नहीं आए, उनके पाँच मित्र सचिव भी साथ आए थे, मगर रणनीति के तहत सुग्रीव के वानर सिपाहियों ने उन सभी को घेरे में ले लिया। सुग्रीव आज्ञा लेने आए कि इनके साथ कैसा व्यवहार किया जाए। तब भगवान ने कहा-

जो सभीत आवा सरनाई,
रखिहौं ताहि प्राण की नाई।

यह सुनकर सुग्रीव भौंचक्के रह गए, मगर हनुमान जी बहुत प्रसन्न हुए। इतना कहने के बाद भगवान ने सोचा कि यह तो हमने अपने स्वभाव की बात कही है। सुग्रीव इत्यादि के लिए नैतिक शिक्षा दी-

सरनागत कहं जे
तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय
तिनहिं बिलोकत हानि॥

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस में नैतिक मूल्य परक शिक्षा समाहित है। आवश्यकता है कि उसे वर्तमान समय में भी आत्मसात किया जाए।

बहुत समय तक प्रयत्न करने पर भी श्री गोपालचंद्र घोष को भावसमाधि न होती थी, जबकि अनेक व्यक्तियों को हो रही थी। एक दिन उन्होंने अपनी यह निराशा श्रीरामकृष्ण परमहंस के समुख प्रकट की। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा-'तू बड़ा कम बुद्धि का है। इसमें निराशा या दुःख की क्या बात है? क्या तू समझता है कि भावसमाधि होने से सब कुछ हो जाता है। क्या यही सबसे बड़ी चीज है? सच्चा त्याग, भाव और परमात्मा में पूरी आस्था उससे भी बड़ी चीज है, भावसमाधि न सही, उज्ज भावों का विकास करो, उस नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) को देखो न, भावसमाधि की चिन्ता किए बिना ही अपने त्याग, विश्वास, निष्ठा और आस्था के करण कितना तेजवान और उन्नत मन वाला तरुण है।' श्री गोपालचंद्र जी की समझ में यह तथ्य आया कि आस्था में स्थिति होना भी समाधि रूप ही है। वे साधना क्रम में उत्साहपूर्वक बढ़ गए।

बीती ताहिं बिसारिये, आगे की सुधि लेय

एक बार गौतम बुद्ध एक गाँव में उपदेश दे रहे थे। उपदेश के क्रम में बुद्ध कह रहे थे कि हर किसी को धरती माता की तरह सहनशील तथा क्षमाशील होना चाहिये। क्रोध ऐसी चिंगारी है जिससे क्रोधी व्यक्ति दूसरों के साथ-साथ स्वयं को भी जला लेता है। वह स्वयं की हानि भी कर लेता है। सभा में संपूर्ण शांति व्याप्त थी। लोग बुद्ध के वचनों को बड़े ही मनोयोग से सुन रहे थे। संयोग से उस सभा में एक ऐसा व्यक्ति बैठा था जो अतिक्रोधी स्वभाव का था। उसे बुद्ध के द्वारा क्रोध न करने की दी गई सीख नहीं सुहा रही थी। उसे उनकी ये बातें बड़ी बेतुकी लग रही थीं।

वह कुछ देर तो सुनता रहा पर वह अचानक ही आग-बबूला हो गया और सभा के बीच खड़े होकर बुद्ध को कहने लगा- 'तुम पाखंडी हो, सिर्फ बड़ी-बड़ी बातें करना ही तुम्हारा काम है। तुम लोगों को भ्रमित कर रहे हो। तुम्हारी ये बातें आज के समय में कोई मायने नहीं रखतीं।' उसके ये सारे कटु वचन सुनकर भी बुद्ध शांत रहे। वे उसकी बातों से न तो आहत हुये और न ही कोई प्रतिक्रिया की। यह देखकर तो वह व्यक्ति और भी क्रोधित हो गया और बुद्ध को बुरा-भला कहकर वहाँ से चला गया।

अगले दिन जब उस व्यक्ति का क्रोध शांत हुआ तो उसे अपने बुरे व्यवहार पर भारी आत्मग्लानि हुई। बुद्ध जैसे महापुरुष को ऐसी-वैसी बातें कहकर अब वह पश्चाताप की अग्नि में जल रहा था। उसका मन बेचैन हो रहा था। वह दूसरे दिन बुद्ध को ढूँढते हुये उसी स्थान पर पहुँचा पर बुद्ध अब वहाँ कैसे मिलते। वे तो अपने शिष्यों के साथ पास वाले एक अन्य गाँव को निकल चुके थे। उस व्यक्ति ने बुद्ध के बारे में लोगों से पूछा और ढूँढते-ढूँढते वह वहाँ पहुँच गया जहाँ बुद्ध प्रवचन दे रहे थे। तथागत को देखते ही वह उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला- 'मुझे क्षमा कीजिये प्रभु!'

बुद्ध ने पूछा- 'तुम कौन हो भाई और तुम क्यों क्षमा माँग रहे हो?' उसने कहा- 'क्या आप भूल गये मैं वही हूँ, जिसने कल आपके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया था। मैं शर्मिन्दा हूँ भगवन्! मैं मेरे दुष्ट आचरण के लिये आपसे क्षमा याचना करने आया हूँ भगवन्!' भगवान बुद्ध ने प्रेमपूर्वक कहा- 'बीता हुआ कल तो मैं वही छोड़कर आ गया और तुम अभी भी वहीं अटके हुये हो। तुम्हें अपनी गलती का आभास हो गया, तुमने पश्चाताप कर लिया। अब तुम निर्मल हो चुके हो। अब तुम आज में प्रवेश करो। बुरी बातें तथा बुरी घटनायें याद करते रहने से वर्तमान और भविष्य दोनों बिगड़ते जाते हैं। बीते हुये कल के कारण आज को मत बिगाड़ो।'

उस व्यक्ति के अंतर्मन से आत्मग्लानि का बोझ अब उतर चुका था। उसने भगवान बुद्ध के चरणों में गिरकर फिर कभी क्रोध नहीं करने का तथा क्षमाशील होने का संकल्प लिया। बुद्ध ने उसके मस्तिष्क पर आशीष का हाथ रखा। उस दिन से उसमें परिवर्तन आ गया और उसके जीवन में सत्य, प्रेम व करुणा की धारा बहने लगी। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है-'बीती ताहिं बिसारिये, आगे की सुधि लेय।' हम अक्सर भूतकाल की गलतियों के बारे में सोचकर दुखी होते हैं और खुद को कोसते हैं। ऐसा करने से समय के नाश के अलावा कुछ नहीं होता। इसलिये हमें अपनी गलतियों को सुधार कर नये विचार व नयी ऊर्जा, नयी दृष्टि के साथ अपने वर्तमान व भविष्य को सँवारना चाहिये। ❑

जैसे मदिरा से भरे हुए घड़े को ऊपर से जल द्वारा सैकड़ों बार धोया जाए तो भी वह पवित्र नहीं होगा। उसी प्रकार दूषित अन्तःकरण वाला मनुष्य भी तीर्थवास या तीर्थस्नान मात्र से शुद्ध नहीं होता।

ऐसे पहुँचे अध्यात्म के हिमालयी शिखर तक

संसार के शोर-शराबे से तंग व परेशान एक व्यक्ति ने एक बार हिमालय की मनोरम वादियों में जाकर आनंद के कुछ पल बिताने का निश्चय किया। वह अगले ही दिन घर से निकल पड़ा। कुछ दिनों की यात्रा के बाद अंतत: वह हिमालय के पास पहुँच गया। अब उसे हिमाच्छादित हिमालय के नयनाभिराम दृश्य दिखने लगे थे। संसार के कोलाहल से दूर, बहुत दूर जाकर अब वह अपने तन-मन को आनंद से भर लेना चाहता था। वह हिमालय के अप्रतिम सौन्दर्य को अपने भीतर भर लेना चाहता था पर वह अपने पैरों में चुभते काँटों और अपने सिर पर रखी हुई भारी टोकरी के कारण अब भी बहुत परेशान था। पैरों में लगे काँटों की चुभन रह-रह कर उसके आनंद में खलल डाल रही थी। पैरों में काँटों की चुभन और सिर पर भारी टोकरी उसे हिमालय की ऊँचाई की ओर चढ़ने-बढ़ने में परेशानी पैदा कर रही थी। अस्तु हिमालय के अप्रतिम सौन्दर्य के बीच आकर भी वह उसके आनंद से सर्वथा वंचित ही था।

अंत में वह एक वृक्ष के नीचे बैठकर पाँव में गहरे धंसे हुये कांटे के टूटे हुये टुकड़े को बहुत ही मुश्किल से निकालने में सफल हुआ। इससे उसे बहुत राहत मिली और वह फिर से सिर पर टोकरी रखकर पर्वत की चढ़ाई की ओर बढ़ने लगा। इस बार पैर तो पीड़ामुक्त थे पर सिर पर रखी भारी टोकरी अभी भी पीड़ादायी बनी हुई थी। तभी उसके मन में एक विचार आया, क्यों न मैं अपने सिर के बोझ को हल्का कर लूँ।

यह सोच कर वह उस टोकरी से एक-एक सामान निकालकर फेंकने लगा और इस प्रकार चलते-चलते उसने उस टोकरी में रखे सारे सामान को फेंक दिया। अंत में उसके सिर पर अब मात्र एक खाली टोकरी पड़ी थी सो उसने अंत में उस खाली टोकरी को भी अपने सिर से उतार फेंका। अब उसका सिर पूरी तरह बोझमुक्त था, भारमुक्त था। सिर पर रखे बोझ के समाप्त होते ही उसने बड़ी ही तीव्रता से पहाड़ की एक बहुत ही लंबी और ऊँची चढ़ाई पार कर ली। कुछ ही देर बाद वह उस पर्वत के सर्वोच्च शिखर तक जा पहुँचा।

अब उसे वास्तव में हिमालय की वादियों का स्पर्श मिलने लगा। वहाँ की घाटियों में खिले रंग-बिरंगे पुष्पों की सुगन्ध से उसका मन भर आया। वहाँ से बहते झरनों के नैसर्गिक संगीत से उसकी आत्मा झंकृत होने लगी। उसके अंतस में नाद बजने लगे और उससे नि:सृत आनंद में वह स्वयं बहने लगा। पल भर में ही उसकी सारी थकान मिट गई। उसके हृदयकमल अनायास ही खिल उठे। मन में, चित्त में एक अपूर्व आनंद का साम्राज्य छा गया।

उस स्वर्गीय आनंद के आगोश में रहकर वह दिन भर स्वयं में खोया रहा और रात्रि में हिमालय पर पड़ रहे चन्द्रमा की धवल चाँदनी के सौन्दर्य को निहारता रहा। साथ ही उसकी आत्मचेतना भी चन्द्रमा की भांति परम प्रकाश से प्रकाशित हो रही है। चन्द्रमा की श्वेत चाँदनी की भांति मेरी आत्मा से भी श्वेत, धवल चाँदनी छिटक रही है, फैल रही है- ऐसी अनुभूति उसे होने लगी। इसी अनुभूति में डूबे उस व्यक्ति को यह भान भी ना रहा कि कब सुबह से शाम और शाम से सुबह हो आई। उसने नजरें उठाकर देखा तो भगवान भास्कर अपनी स्वर्णिम लालिमा लिये उदय हुये जा रहे थे। उसे लगा कि मानो उसके अंतराकाश में भी आनंद का ऐसा ही सूरज उग आया हो और उसके रोम-रोम से अंतर्ज्योति छिटक रही हो।

अपने अंतरतम में आनंद के ऐसे ही अगणित सूर्य, चंद्र और तारों के साथ वह व्यक्ति हिमालय पर घंटों विचरते हुये, वहाँ की गुफाओं में ध्यानस्थ सिद्ध योगियों का दिव्य दर्शन करता रहा और अंतत: उन सभी दिव्य अनुभूतियों को अपने अंतरतम में समेटे हुये, सहेजे हुये वह हिमालय से उतरकर पुण्य धरा पर विचरण करते हुये आनंदपूर्वक जीवन जीने लगा। हम यदि गौर करें तो उस व्यक्ति की भांति, हम सब भी एक ऐसे ही यात्री हैं जो संसार के शोर-शराबे से परेशान हैं। संसार की आपा-धापी से दु:खी हैं और भौतिकता की अंधी दौड़ में दौड़ते-दौड़ते थक चुके हम सभी एक आनंददायी व मधुर जीवन की तलाश में भटक रहे हैं। अपने चित्त में संचित

संस्कारों के शोर-शराबे से हम सभी परेशान हैं। हमारे चित्त में जन्म-जन्मांतरों से संचित हमारे शुभ-अशुभ, कर्मों के संस्कार ही हमारे पैरों में गहराई से चुभे हुये कांटे हैं, जो हमें रह-रहकर भारी पीड़ा व वेदना देते हैं और हमारे मन में दूसरों के लिये घृणा, नफरत, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि भावनायें व विचार ही हमारे सिर पर, हमारे मन पर रखे हुये बोझ हैं।

अत: हमें इन दोनों से मुक्त होना होगा तभी हम आत्मज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर, अमृतमय जीवन के मार्ग पर, आनंद के मार्ग पर निकल सकेंगे, चल सकेंगे। हम भी निस्संदेह अपने चित्त के संस्कारों से उठते शोर-शराबों से परेशान हैं, अशांत हैं और इसीलिए आनंद से वंचित हैं। हम भी उस व्यक्ति की भांति अंतर्जगत की यात्रा पर निकलना चाहते हैं, संस्कारों के शोर-शराबे से दूर बहुत दूर जाकर सुख, शांति व आनंद के कुछ पल बिताना चाहते हैं पर क्या करें? जैसे उस यात्री के पैरों में चुभे हुये और पैरों के अंदर ही टूटे हुए काँटों की चुभन उसे रह-रहकर दु:ख दे रही थी, पीड़ा दे रही थी, वैसे ही हमारे द्वारा ही किये गये जन्म-जन्मांतरों के शुभ-अशुभ, पुण्य-पापादि कर्मों के संचित संस्कार हमारे चित्त में गहराई से चुभे हुये, टूटे हुये काँटों के समान हैं, जो रह-रहकर हमें पीड़ा देते हैं, दु:ख देते हैं और हमें अंतर्जगत की यात्रा पर निकलने से रोकते हैं और उसके आनंद से वंचित रखते हैं।

हमें भी उस यात्री की ही भांति पहले अपने चित्त में चुभे हुये संस्कारों के टूटे हुये, काँटों के टुकड़ों को बाहर निकालना होगा। दूसरी ओर हमें अपने चित्त से राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मल को भी अपने मन से उतार फेंकना होगा। तभी हम अध्यात्म के शिखर की ओर आरोहण कर सकेंगे और तब ही हम अपनी आत्मचेतना को परमात्मचेतना की ओर उन्मुख कर सकेंगे। हमें सबसे पहले अपने हृदय को करुणा, प्रेम, संवेदना, सत्य, क्षमा आदि दिव्य भावनाओं से आपूरित करना होगा।

जिस व्यक्ति के हृदय में ऐसी दिव्य भावनायें उमड़-घुमड़ रही हों उस व्यक्ति के मन में किसी के प्रति घृणा, नफरत, ईर्ष्या, द्वेष-क्रोध आदि नकारात्मक भावनायें रह ही नहीं सकतीं। हम निश्चित ही अपने जीवन को अमृत व आनंद से भर सकते हैं। इस हेतु विविध शास्त्रों में ज्ञान, कर्म व भक्ति आदि विभिन्न उपाय बताये गये हैं। इस हेतु महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये उपाय अधिक सुगम, सरल व वैज्ञानिक प्रतीत होते हैं। योग सूत्र १/३३ में महर्षि पतंजलि कहते हैं-

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुः
खपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।

अर्थात् सुखी मनुष्यों के प्रति मित्रता की भावना करने से, दु:खी मनुष्यों के प्रति दया की भावना करने से, पुण्यात्मा पुरुषों के प्रति प्रसन्नता की भावना करने से और पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना रखने से चित्त के राग-द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलों का नाश होकर चित्त शुद्ध और निर्मल हो जाता है। अत: साधक को इसका अभ्यास करना चाहिये। चित्त शुद्धि के दूसरे साधन के रूप में प्राणायाम की महत्ता को योगसूत्रकार कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य॥ १/३४

अर्थात् बारम्बार प्राणवायु को शरीर से बाहर निकालने तथा बाहर रोकने के अभ्यास से भी चित्त निर्मल होता है। इस प्रकार चित्त की निर्मलता के उपाय बताकर ऋषिवर योगसूत्र में चित्त को स्थिर करने के बड़े ही प्रभावी उपाय बताते हैं-

वीतरागविषयं वा चित्तम्। १.३७

अर्थात् जिस पुरुष के राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त पुरुष के विरक्त, वीतराग भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है। वे पुन: अगले सूत्र में कहते हैं-

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा। १.३८

अर्थात् स्वप्न और निद्रा के ज्ञान का अवलम्बन करने वाला चित्त भी स्थिर हो सकता है। इस सूत्र में ऋषिवर कहना चाहते हैं कि यदि स्वप्न में कोई अलौकिक अनुभव हुआ हो, जैसे अपने इष्टदेव का दर्शन आदि, तो उसको स्मरण करके वैसा ही चिन्तन करने से मन स्थिर हो जाता है तथा प्रगाढ़ निद्रा में केवल चित्त की वृत्तियों के अभाव का ही ज्ञान रहता है।

हर मनुष्य की रुचि भिन्न होती है अत: सर्वसाधारण की रुचि के अनुसार ऋषिवर मन को स्थिर करने के लिए ध्यान के रूप में एक अन्य उपयोगी साधन का वर्णन करते हैं-

यथाभिमतध्यानाद्वा। १.३९

अर्थात् जिसका जो अभिमत हो, उसके ध्यान से, भी मन स्थिर हो जाता है। इस सूत्र में ऋषिवर कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त साधनों में से कोई साधन किसी साधक के अनुकूल नहीं पड़ता हो तो उसे अपनी रुचि के अनुसार अपने इष्ट का ध्यान करना चाहिये। अपनी रुचि के अनुसार अपने इष्टदेव का ध्यान करने से मन स्थिर हो जाता है।

ध्यान वास्तव में एक बहुत ही प्रभावशाली शल्यक्रिया है, सर्जरी है। अपनी रुचि के अनुसार साकार या निराकार ध्यान का अभ्यास करते-करते जब ध्यान गहरा और प्रगाढ़ होता जाता है तब ध्यान के उस गहरेपन में उतरकर साधक ध्यान के द्वारा ही अपने चित्त की शल्यक्रिया करता है और वैसा करके वह उसमें आवश्यक फेरबदल करता है।

ध्यान की गहनतम अवस्था व गहराई में उतर कर वह अपने ध्यानस्थ नेत्रों से देखता है कि मैंने जन्म-जन्मान्तरों से लेकर अब तक जिस किसी भी प्रकार की शुभ या अशुभ क्रियायें की हैं, जिस किसी वस्तु का अनुभव किया है, जिस किसी भी प्रकार की कामनायें की हैं, वे सभी संस्कार रूप में मेरी चित्तभूमि में ही दफन हैं, मेरी चित्तभूमि में ही संचित हैं। इन संचित संस्कारों से ही हमारे अंतस में विभिन्न प्रकार के शोर-शराबे उठते रहे हैं। इन संस्कारों के कारण ही मेरे चित्त की चंचलता व मलिनता अब तक बनी रही, जिसके कारण मैं अब तक अपने सोऽहम्, शिवोऽहम् व सच्चिदानंदोऽहम् स्वरूप के दर्शन नहीं कर सका। इन्हीं संस्कारों के प्रभाव में आकर मैं अब तक त्याग, तपस्या व ईश्वर के मार्ग पर चलने की बजाय भोग, विलास व संसार के प्रति ही आसक्त रहा।

वह महसूस कर पाता है कि ये वे ही संस्कार हैं जो अब तक मेरे चित्त में शूल बनकर, काँटे बनकर चुभ रहे थे। इन्हीं के कारण मैं अब तक संसार चक्र में पड़ा रहा। इन्हीं के कारण मैं अब तक मुक्तिलाभ जैसे परमलाभ से वंचित रहा। इस प्रकार समस्या के मूल तक पहुँचकर ध्यान की एक अनंत गहराई में उतरकर, चेतन से अचेतन मन तक पहुँचकर ध्याता के द्वारा अपने ध्यानस्थ नेत्रों से ही ध्यान की अग्नि ऊर्जा पहुँचाई जाती है जहाँ सारे संस्कार संचित हैं।

ध्यान की वह अग्नि ऊर्जा उन सभी संस्कारों को समूल नष्ट कर चित्त को संस्कारशून्य कर देती है, संस्कारों से मुक्त कर देती है। ध्यान एक ऐसी ही तकनीक है जिसके द्वारा चित्त की एक सफल शल्यक्रिया, सर्जरी की जाती है। ध्यान की अग्नि ऊर्जा, चित्त भूमि पर डाली जाती है और उसे पूर्णतः संस्कारशून्य कर दिया जाता है। इस प्रकार उन संस्कारों के नष्ट होते ही साधक ध्यान की अनंत गहराई में उतरकर समाधि को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् अपने निजस्वरूप, आत्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

ऐसा होने पर उसका प्रकृति में और उसके कर्मों में स्वभाव से ही वैराग्य हो जाता है और वह शीघ्र ही सत्-चित्-आनन्दस्वरूप को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। इस प्रकार वह अध्यात्म के हिमालयी शिखर तक पहुँचकर आत्मा व परमात्मा का साक्षात्कार कर निहाल हो उठता है, आनंदित हो उठता है। यदि चाहें तो इस प्रयोग को स्वयं के साथ करके हम भी अध्यात्म के हिमालयी शिखर तक पहुँचकर अपने निज स्वरूप को पाकर आत्मिक आनंद को प्राप्त कर सकते हैं। ❑

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया। अश्वत्थामा ने सोचा कि पाण्डवों को सोते समय कपट से मार दूँगा। भगवान कृष्ण पाण्डवों के रक्षक थे। उन्होंने उन्हें सोते से जगाया, कहा- मेरे साथ गंगा किनारे चलो। पाण्डव प्रभु की बात बिना किसी प्रतिरोध के मान लेते थे। उठकर चल दिए। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी पुत्रों से भी साथ चलने को कहा, परन्तु बाल बुद्धि होने के कारण उन्होंने इंकार कर दिया। कहा-आप जाओ हमें तो नींद आ रही है, सोएँगे। वस्तुतः प्रभु के जगाने पर जो जाग गए, बच गए। जिन्होंने सोने की जिद की, वे लंबी नींद सो गए। प्रभु की अयाचित सहायता का लाभ केवल निष्ठावान ही उठा पाते हैं। जो अपनी बुद्धि की सीमा से परे है वह लाभ आस्था ही दे पाती है।

इच्छाशक्ति को ऐसे बनायें प्रबल

इच्छाशक्ति मन का वह संकल्पबल है, जो निर्धारित लक्ष्य को किसी भी कीमत पर सिद्ध करता है, उसे कल्पना लोक से उतारकर यथार्थ में मूर्तरूप प्रदान करता है। इच्छाशक्ति जितनी प्रचण्ड होती है, यह प्रक्रिया उतनी ही तीव्र गति से घटित होती है और समय के साथ संकल्प सृष्टि जैसे-शून्य से निकलकर पूर्ण रूप लेते हुए सामने प्रकट हो जाती है।

इस तरह जीवन व इसका सृजन और कुछ नहीं, बल्कि संकल्पशक्ति के ही चमत्कार हैं। परमतत्व ब्रह्म का **'एकोऽहम् बहुस्यामि'** का संकल्प इस सृष्टि की रचना, विस्तार एवं गति का आधार बनता है। इसी तरह सृष्टि का हर घटक उसी ईश्वरीय संकल्प के अनुरूप गतिशील है।

यह मनुष्य की ही विशेषता है कि वह सचेतन रूप में इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए जीवन के बाह्य क्षेत्र में मनोवांछित उपलब्धियों को अर्जित कर सकता है तथा आंतरिक रूप में सद्गुणसम्पन्न बन सकता है।

जीवन में उत्कर्ष की इच्छाशक्ति के अभाव में व्यक्ति की संभावनाऐं अपनी संपूर्ण क्षमताओं के साथ प्रकट नहीं हो पातीं। दुर्बल इच्छाशक्ति के रहते जीवन एक अंतहीन संघर्ष बन जाता है, जिसका कोई सार्थक निष्कर्ष नहीं निकल पाता। दुर्बल इच्छाशक्ति के कारण जीवन पलायन का पर्याय बन जाता है, व्यक्ति राह की चुनौतियों का सामना भी नहीं कर पाता। आत्मविश्वास की कमी, भय, संशय, हीनता जैसे भावों से चित्त क्लान्त रहता है तथा जीवन के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण हावी रहता है।

इस स्थिति से उबरने के लिए इच्छाशक्ति को क्रमिक रूप में विकसित किया जा सकता है तथा अवांछनीय स्थिति को बदला जा सकता है। इच्छाशक्ति शरीर की माँसपेशियों की तरह से होती है, जिसे उचित व्यायाम के साथ सशक्त बनाया जा सकता है। प्रस्तुत हैं कुछ उपाय जिनके साथ इच्छाशक्ति को प्रबल बनाया जा सकता है-

1- रात्रि को समय पर शयन एवं प्रातः समय पर जागरण के साथ इच्छाशक्ति का अभ्यास किया जा सकता है। यह प्रक्रिया बिगड़ी दिनचर्या में सुधार के संकल्प का हिस्सा हो सकती है। अलार्म लगाकर प्रातः निश्चित समय पर जागरण को सुनिश्चित किया जा सकता है। फिर समय पर उठना, सर्दी में रजाई से समय पर बाहर निकलना व दिनचर्या के निर्धारित कार्यक्रमों में शामिल होना- ये सब प्रबल इच्छाशक्ति के विकास के साधन माने जा सकते हैं।

2- उठने के बाद दैनिक दिनचर्या में प्रातः भ्रमण या हल्के व्यायाम, योगासन आदि को अपनाया जा सकता है। स्नान में बहुत ठण्ड न हो तो शीतल जल की फुआरों के साथ इच्छाशक्ति को बढ़ाने का प्रयोग किया जा सकता है, जिसे स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी माना जाता है।

3- खान-पान की बिगड़ी आदतों का सुधार सशक्त इच्छाशक्ति की माँग करता है। मिठाई, फास्टफूड व हानिकारक स्वादिष्ट व्यंजनों के प्रलोभन के मध्य बरता गया संयम इच्छाशक्ति का विकास करता है। इसके साथ स्वास्थ्यवर्धक आहार को सचेतन रूप में दिनचर्या में शामिल करना इसके अंग माने जा सकते हैं।

4- अपने विचारों को सकारात्मक बनाए रखना इच्छाशक्ति के ही सूक्ष्म प्रयोग हैं। जीवन शैली में स्वाध्याय व सकारात्मक चिंतन का समावेश करते हुए, नकारात्मक विचारों को श्रेष्ठ विचारों से काटते हुए व्यक्ति आशावादी दृष्टिकोण का विकास करता है, जो सशक्त इच्छाशक्ति का आधार बनते हैं।

5- अपनी किसी दुर्बलता को जीतने व इसे अपनी शक्ति में बदलने का अभ्यास इच्छाशक्ति का बहुत उपयुक्त प्रयोग रहता है। व्यक्ति की आंतरिक दुर्बलताऐं ऐसे नासूर की तरह होती हैं, जो अंदर से पीड़ा के रूप में रिसती रहती हैं, व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देती। इनके घटने के साथ आत्मविश्वास बढ़ता है तथा इच्छाशक्ति सशक्त होती है।

6- अर्थ का सही नियोजन इच्छाशक्ति की माँग करता है। फिजूलखर्ची व अनावश्यक विलासिता से बचने

तथा अपनी सीमा में सादगी भरा जीवन जीना सूझ व साहस की माँग करते हैं। इसके साथ उचित बचत एवं दान का अभ्यास इच्छाशक्ति को सुदृढ़ करते हैं।

7- निर्धारित लक्ष्यों को समय सीमा के अंतर्गत पूरा करने का अभ्यास, मुस्तैदी एवं कठोर अनुशासन की माँग करता है, जिसके साथ इच्छाशक्ति का विकास होता है। इस रूप में कर्तव्यनिष्ठा इच्छाशक्ति को बढ़ाने की एक व्यवहारिक एवं उपयोगी विधि रहती है।

8- जीवन के द्वन्द्वों के बीच समभाव बनाए रखना उच्चस्तरीय समझ एवं इच्छाशक्ति की माँग करता है। सुख-दु:ख, मान-अपमान, हानि-लाभ, सफलता-असफलता के बीच समबुद्धि का अभ्यास जीवन को प्रकाशित करने वाला आध्यात्मिक प्रयोग रहता है, जिसको ध्यान के साथ सम्पन्न किया जा सकता है।

9- वर्तमान संचार क्रांति के युग में जब पूरा विश्व एक स्मार्टफोन में सिमट गया हो और साथ ही जब यह व्यक्ति के लिए वरदान से अधिक अभिशाप बनता जा रहा हो, तो यह इच्छाशक्ति के अभ्यास का एक बहुत उपयुक्त उपकरण बन जाता है। मोबाइल के तमाम प्रलोभनों के बीच इसका संयमित एवं अनुशासित उपयोग इच्छाशक्ति को विकसित करने का माध्यम बन जाता है, जिससे जुड़ी श्रेष्ठ संभावनाऐं अंतत: जीवन में साकार हो उठती हैं।

इस तरह हम दैनिक जीवन में इच्छाशक्ति के छोटे-छोटे अभ्यास करते हुए इसे शरीर की माँसपेशियों की भाँति ही सशक्त बना सकते हैं। हाँ! यहाँ इसके अभ्यास में अति से बचने की आवश्यकता है। शारीरिक सौष्ठव में जैसे-अत्यधिक भार का प्रयोग माँसपेशियों को क्षति पहुँचा सकता है, वैसे ही इच्छाशक्ति का विकास भी सम्यक् अभ्यास की माँग करता है। इसके राजमार्ग पर चलते हुए, एक समय पर एक कदम बढ़ाते हुए हम सशक्त इच्छाशक्ति के स्वामी बन सकते हैं, जिसका उपयोग फिर जीवन को सचेतन रूप से मनोवांछित दिशा में विकसित करने में किया जा सकता है।

❑

विदेशों में गाँधीजी के बारे में बहुत चर्चा होती थी। उनमें से कितने ही कौतूहलवश गाँधीजी के साथ रहना चाहते थे। इनमें से कुछेक को थोड़े समय ठहरने की आज्ञा मिल जाती थी, पर आश्रमवासी के रूप में उन्हें ही स्वीकृति दी जाती थी जो आजीवन निर्धारित प्रयोजनों के लिए अपना जीवन अर्पण करना चाहते थे।

मिस स्लेड इंग्लैंड के एक सैनिक परिवार में जन्मीं। उनकी बहुत इज्छा गाँधीजी के सपर्क में रहने की थी। उन्हें अपने घर पर ही आश्रम जीवन का अयास करने के लिए कहा गया और बन पड़े तो हिन्दुस्तान आने के लिए कहा गया। मिस स्लेड हिन्दुस्तान आकर मीरा बेन के नाम से प्रयात हुईं। उन्होंने भारत को अपना घर माना और इंग्लैंड निवासियों की नाराजगी की परवाह नहीं की। वे अपने को विश्व नागरिक बना चुकी थीं। उन्होंने पशु-पक्षियों तक से आत्मीयता स्थापित की और ऋषिकेश के समीप पशुलोक स्थापित करके जनसाधारण का ध्यान पशुओं के साथ आत्मीयता बरतने के लिए आकर्षित किया। वे आजीवन कुमारी ही रहीं।

तपस्या के प्रतीक ऋषि अगस्त्य

अगस्त्य (अगतियार) एक वैदिक ऋषि थे। ये वशिष्ठ मुनि के बड़े भाई थे। इनका जन्म श्रावण शुक्ल पंचमी (तदनुसार ३००० ई. पू.) को काशी में हुआ था। वर्तमान में वह स्थान अगस्त्यकुंड के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी पत्नी लोपामुद्रा विदर्भ देश की राजकुमारी थी। इन्हें सप्तर्षियों में से एक माना जाता है। देवताओं के अनुरोध पर इन्होंने काशी छोड़कर दक्षिण की यात्रा की और बाद में वहीं बस गये थे।

महर्षि अगस्त्य राजा दशरथ के राजगुरु थे। महर्षि अगस्त्य को मंत्रदृष्टा ऋषि कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने अपने तपस्या काल में उन मंत्रों की शक्ति को देखा था। ऋग्वेद के अनेक मंत्र इनके द्वारा दृष्ट हैं। महर्षि अगस्त्य ने ही ऋग्वेद के प्रथम मंडल के १६५ सूक्त से १९१ तक के सूक्तों को बताया था। साथ ही इनके पुत्र दृढ़च्युत तथा दृढच्युत के पुत्र इध्मवाह भी नवम मंडल के २५वें तथा २६वें सूक्त के द्रष्टा ऋषि हैं।

महर्षि अगस्त्य को पुलस्त्य ऋषि का बेटा माना जाता है। उनके भाई का नाम विश्रवा था जो रावण के पिता थे। पुलस्त्य ऋषि, ब्रह्माजी के पुत्र थे। महर्षि अगस्त्य ने विदर्भ नरेश की पुत्री लोपामुद्रा से विवाह किया, जो विद्वान और वेदज्ञ थीं। दक्षिण भारत में उन्हें मलयध्वज नाम के पांड्य राजा की पुत्री बताया जाता है। वहाँ उनका नाम कृष्णेक्षणा है। माना जाता है कि इनका इध्मवाहन नाम का पुत्र था।

ऋषि अगस्त्य के बारे में कहा जाता है कि एक बार इन्होंने अपनी मंत्र शक्ति से समुद्र का समूचा जल पी लिया था, विंध्याचल पर्वत को झुका दिया था और मणिमती नगरी के इल्वल तथा वातापी नामक दुष्ट दैत्यों की शक्ति को नष्ट कर दिया था। अगस्त्य ऋषि के काल में राजा श्रुतर्वा, बृहदस्थ और त्रसदस्यु थे। इन्होंने अगस्त्य के साथ मिलकर दैत्यराज इल्वल को झुकाकर उससे अपने राज्य के लिए धन-संपत्ति माँग ली थी।

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः
कुंभे रेतः सिषिचतुः समानम्।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्
ततो ज्ञातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥

इस ऋचा के भाष्य में आचार्य सायण ने लिखा है-

ततो वासतीवरात् कुंभात मध्यात्
अगस्त्यो शमीप्रमाण उदियाप प्रादुर्बभूव।
तत एव कुंभाद्वसिष्ठमप्यृषिं जातमाहुः॥

दक्षिण भारत में अगस्त्य तमिल भाषा के आद्य वैय्याकरण हैं। यह कवि शूद्र जाति में उत्पन्न हुए थे इसलिए उनका ग्रंथ 'शूद्र वैयाकरण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह ऋषि भी अगस्त्य के ही अवतार माने जाते हैं। ग्रंथकार के नाम परुन का यह व्याकरण 'अगस्त्य व्याकरण' के नाम से प्रख्यात है। तमिल विद्वानों का कहना है कि यह ग्रंथ पाणिनि की अष्टाध्यायी के समान ही मान्य, प्राचीन तथा स्वतंत्र कृति है जिससे ग्रंथकार की शास्त्रीय विद्वता का पूर्ण परिचय उपलब्ध होता है।

भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में उनके विशिष्ट योगदान के लिए जावा-सुमात्रा आदि में इनकी पूजा की जाती है। महर्षि अगस्त्य वेदों में वर्णित मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं। इन्होंने आवश्यकता पड़ने पर कभी दैत्यों को उदरस्थ कर लिया था तो कभी समुद्र भी पी गये थे। महर्षि अगस्त्य के भारतवर्ष में अनेकों आश्रम हैं। इनमें से कुछ मुख्य आश्रम उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु में हैं। उत्तराखण्ड के रुद्रप्रयाग नामक जिले के अगस्त्यमुनि नामक शहर भी है। यहाँ महर्षि ने तप किया था तथा आतापी-वातापी नामक दो असुरों का वध किया था।

मुनि के आश्रम के स्थान पर वर्तमान में एक मन्दिर है। आसपास के अनेकों गाँवों में महर्षि अगस्त्य की इष्टदेव के रूप में मान्यता है। मन्दिर में मठाधीश पुरोहित निकटस्थ बेंजी नामक गाँव से होते हैं। दूसरा आश्रम महाराष्ट्र के नागपुर जिले में है। यहाँ महर्षि ने रामायण काल में निवास किया था। श्रीराम के गुरु महर्षि वशिष्ठ तथा इनका आश्रम पास ही था। गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से श्रीराम ने

ऋषियों को सताने वाले असुरों का वध करने का प्रण लिया था- 'निसिचर हीन करुहुँ महिं, भुज उठाए प्रण कीन्ह।' महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम को इस कार्य हेतु कभी समाप्त न होने वाले तीरों वाला तरकश प्रदान किया था।

महर्षि अगस्त्य का एक अन्य आश्रम तमिलनाडु के तिरुपति में है। पौराणिक मान्यता के अनुसार विंध्याचल पर्वत जो कि महर्षि का शिष्य था, उसका घमण्ड बहुत बढ़ गया था तथा उसने अपनी ऊँचाई बहुत बढ़ा दी जिस कारण सूर्य की रोशनी पृथ्वी पर पहुँचनी बन्द हो गई तथा प्राणियों में हाहाकार मच गया। सभी देवताओं ने महर्षि से अपने शिष्य को समझाने की प्रार्थना की। महर्षि ने विंध्याचल पर्वत से कहा कि उन्हें तप करने हेतु दक्षिण में जाना है अत: उन्हें मार्ग दे। विंध्याचल महर्षि के चरणों में झुक गया, महर्षि ने उसे कहा कि वह उनके वापस आने तक झुका ही रहे तथा पर्वत को लाँघकर दक्षिण को चले गये। उसके पश्चात वहीं आश्रम बनाकर उन्होंने तप किया तथा वहीं रहने लगे।

महर्षि अगस्त्य का एक आश्रम महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के अकोला जिले में प्रवरा नदी के किनारे है। यहाँ महर्षि ने रामायण काल में निवास किया था। माना जाता है कि उनकी उपस्थिति में सभी प्राणी शत्रुता भूल गये थे। महर्षि अगस्त्य केरल में मार्शल आर्ट कलरीपायट्टु की दक्षिणी शैली वर्मक्कलै के संस्थापक आचार्य एवं आदिगुरु भी हैं। वर्मक्कलै नि:शस्त्र युद्ध कला शैली है। मान्यता के अनुसार भगवान शिव ने अपने पुत्र मुरुगन (कार्तिकेय) को यह कला सिखायी तथा मुरुगन ने यह कला अगस्त्य को सिखायी। महर्षि अगस्त्य ने यह कला अन्य सिद्धों को सिखायी तथा तमिल में इस पर पुस्तकें भी लिखीं। महर्षि अगस्त्य दक्षिणी चिकित्सा पद्धति 'सिद्धवैद्यम्' के भी जनक हैं।

महर्षि अगस्त्य ने 'अगस्त्य संहिता' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ की बहुत चर्चा होती है। इस ग्रंथ की प्राचीनता पर भी शोध हुई है और इसे सही भी पाया गया है। आश्चर्यजनक रूप से इस ग्रंथ में विद्युत उत्पादन से संबंधित सूत्र मिलते हैं-

संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम्।
छादयेच्छिखिग्रीवेन चार्दाभिः काष्ठापांसुभिः॥
दस्तालोष्टो निधात्वयः पारदाच्छादितस्ततः।
संयोगाज्जायते तेजो मित्रावरुणसंज्ञितम्॥

अर्थात् एक मिट्टी का पात्र लें, उसमें ताम्र पट्टिका (Copper Sheet) डालें तथा शिखिग्रीवा (Copper sulphate) डालें, फिर बीच में गीली काष्ट पांसु (wet saw dust) लगाऐं, ऊपर पारा (Mercury) तथा दस्त लोष्ट (Zinc) डालें, फिर तारों को मिलाएंगे तो उससे मित्रावरुणशक्ति (Electricity) का उदय होगा। अगस्त्य संहिता में विद्युत का उपयोग इलेक्ट्रोप्लेटिंग (Electroplating) के लिए करने का भी विवरण मिलता है। उन्होंने बैटरी द्वारा तांबे या सोने या चाँदी पर सतह चढ़ाने की विधि निकाली, अत: अगस्त्य को कुंभोद्भव भी कहते हैं।

अनने जलभंगोस्ति प्राणो दानेषु वायुषु।
एवं शतानां कुंभानांसंयोगकार्यकृत्स्मृत॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं-सौ कुंभों (उपरोक्त प्रकार से बने तथा श्रृंखला में जोड़े गए सौ सेलों) की शक्ति का पानी पर प्रयोग करेंगे, तो पानी अपने रूप को बदलकर प्राणवायु तथा उदान वायु में परिवर्तित हो जाएगा।

कृत्रिमस्वर्णरजतलेपः सत्कृतिरुच्यसते।
यवक्षारमयोधानौ सुशक्तजलसन्निधो॥
आच्छादयति तत्ताम्रं स्वर्णेन रजतेन वा।
सुवर्णलिप्तं तत्तामग्र शातकुंभमिति स्मृतम्॥

अर्थात् कृत्रिम स्वर्ण अथवा रजत के लेप को सत्कृति कहा जाता है। लोहे के पात्र में सुशक्त जल (तेजाब का घोल) इसका सान्निध्य पाते ही यवक्षार (सोने या चाँदी का नाइट्रेट) ताम्र, स्वर्ण या रजत को ढंक लेता है। स्वर्ण से लिप्त उस ताम्र को शातकुंभ अथवा स्वर्ण कहा जाता है। इसका उल्लेख शुक्र नीति में भी है। आधुनिक नौकायन और विद्युतवहन, संदेशवहन आदि के लिए जो अनेक बारीक तारों की बनी मोटी केबल या डोर बनती है वैसी प्राचीनकाल में भी बनती थी जिसे रज्जु कहते थे।

नवभिस्तन्तुभिः सूत्रं सूत्रैस्तु नवभिर्गुणः।
गुर्णैस्तु नवभिपाशो रश्मिस्तैर्नवभिर्भवेत्।
नवाष्टसप्तषड् संख्ये रश्मिभिर्रज्ज्वः स्मृताः॥

नौ तारों का सूत्र बनता है, नौ सूत्रों का एक गुण,

नौ गुणों का एक पाश, नौ पाशों से एक रश्मि और नौ, आठ, सात या छः रज्जु रश्मि मिलाकर एक रज्जु बनती है। इसके अलावा अगस्त्य मुनि ने गुब्बारों को आकाश में उड़ाने और विमान को संचालित करने की तकनीक का भी उल्लेख किया है।

जललनौकेव यानं यद्विमानं व्योम्निकीर्तितं।
कृमिकोषसमुदगतं कौषेयमिति कथ्यते॥
सूक्ष्मासूक्ष्मौ मृदुस्थलै औतप्रोतो यथाक्रमम्।
वैतानत्वं च लघुता च कौषेयस्य गुणसंग्रहः॥
कौशेयछत्रं कर्त्तव्यं सारणा कुचनात्मकम्।
छत्रं विमानद्विगुणं आयामादौ प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात्–उपरोक्त पंक्तियों में कहा गया है कि विमान वायु पर उसी तरह चलता है, जैसे जल में नाव चलती है। तत्पश्चात् उन काव्य पंक्तियों में गुब्बारों और आकाश छत्र बनाने के लिए रेशमी वस्त्र को सुयोग्य कहा गया है, क्योंकि वह बड़ा लचीला होता है। प्राचीनकाल में ऐसा वस्त्र बनता था जिसमें वायु भरी जा सकती थी। उस वस्त्र को बनाने की निम्न विधि अगस्त्य संहिता में है–

क्षीकद्रुमकदबाभ्रा भयाक्षत्वश्जलैस्त्रिभिः।
त्रिफलोदैस्ततस्तद्वत्पाषयुषैस्ततः स्ततः॥
संयम्य शर्करासूक्तिचूर्ण मिश्रितवारिणां।
सुरसं कुट्टनं कृत्वा वासोसि स्त्रवयेत्सुधीः॥

अर्थात् रेशमी वस्त्र पर अंजीर, कटहल, आंब, अक्ष, कदम्ब, मीराबोलेन वृक्ष के तीन प्रकार और दालें– इनके रस या सत्व के लेप किए जाते हैं। तत्पश्चात् सागर तट पर मिलने वाले शंख आदि और शर्करा का घोल यानी द्रव सीरा बनाकर वस्त्र को भिगोया जाता है, फिर उसे सुखाया जाता है। इसके उपरांत इसमें वायु भरकर उड़ा जा सकता है।

महर्षि अगस्त्य के बाद वैशेषिक दर्शन में भी ऊर्जा के स्रोत, उत्पत्ति और उपयोग के संबंध में बताया गया है। अगस्त्य ऋषि ज्ञान–विज्ञान के ऋषि थे। उन्होंने सृष्टि के कल्याण के लिए घनघोर तपस्या की और संसार की समृद्धि एवं विकास के लिए अनेकों आविष्कार किए।

❑

महाराज ययाति वैसे तो बड़े ही विद्वान और ज्ञानवान राजा थे किंतु दुर्भाग्यवश उन्हें वासनाओं का रोग लग गया और वे उनकी तृप्ति में निमग्न हो गए। स्वाभाविक था कि च्यों-ज्यों वे इस अग्नि में आहुति देते गये त्यों-त्यों वह और भी प्रचण्ड होती गई और शीघ्र ही वह समय आ गया जब उनका शरीर खोखला हो गया और शक्तियाँ बूढ़ी हो गईं। सारे सुकृत खोए, बेटे के प्रति अत्याचारी के रूप में कुयात हुए, परमार्थ का अवसर भी खोया और मृत्यु के बाद युग-युग के लिए गिरगिट की योनि पाई, किन्तु वासना की पूर्ति न हो सकी।

इसी प्रकार पाण्डु जैसे बुद्धिमान राजा पीलिया रोग होने के साथ ही वासना के कारण ही अकालमृत्यु को प्राप्त हुए। शान्तनु जैसे राजा ने बुढ़ापे में वासना के वशीभूत होकर अपने देवव्रत भीष्म जैसे महान पुत्र को गृहस्थ सुख से वंचित कर दिया। विश्वामित्र जैसे तपस्वी और इंद्र जैसे देवता वासना के कारण ही व्यभिचारी और तपभ्रष्ट होने के साथ पातकी बने।

वासना का विषय निःसंदेह बड़ा भयंकर होता है, जिसके शरीर का शोषण हो जाता है तथा लोक-परलोक तक को बिगाड़ देता है। इस विष से बचे रहने में ही मनुष्य का मंगल है।

वृद्धाश्रमों का बढ़ता प्रचलन

क्या हमारा समाज अब वृद्धाश्रमों की भीड़ के लिए तैयार हो रहा है? क्योंकि आज हमारे समाज के ज्यादातर परिवारों में वृद्ध लोगों की ठीक से देखभाल करने वाला कोई नहीं है। अब हमारे समाज में संयुक्त परिवार नहीं रहे, और एकल परिवारों में एक बेटा या एक बेटी वाले लोग समाज में ज्यादा हैं और यदि ऐसी स्थिति में परिवार का बेटा या बेटी विदेश चले गए, तो उन परिवारों में उनके माता-पिता की देखभाल कौन करेगा?

बड़े महानगरों में छोटे-छोटे फ्लैटों में माता-पिता को रखना भी कोई समस्या नहीं है लेकिन तीन-चार मंजिला भवनों में जिनमें लिफ्ट नहीं होती, उनमें बुजुर्ग माता-पिता को कोई रोज ऊपर से नीचे कैसे लाए? घर के जिम्मेदार सदस्य जब नौकरी के कारण घर से बाहर हों, तो कौन उन्हें समय पर खाना-पानी दे, दवा दे। यह एक नए तरह की समस्या खासतौर से छोटे परिवारों में उभर कर सामने आ रही है।

बुजुर्गों के सामने सुरक्षा की भी एक समस्या है। लोग बड़ी-बड़ी कोठियों में अकेले रहने से डरने लगे हैं क्योंकि लूटपाट के मामलों में बुजुर्ग व्यक्ति ही सबसे ज्यादा निशाने पर रहते हैं। कई बार तो नौकर ही इन्हें अपना निशाना बना लेते हैं। ऐसे में हमारे समाज में वृद्धाश्रम ही उनका अंतिम सहारा बचता है।

आजकल ऐसे कई उदाहरण सामने आते हैं, जिसमें बुजुर्ग लोग वृद्धाश्रमों में जाना पसंद करते हैं। जैसे-अस्सी साल के एक वकील साहब का जब अपने ही घर वालों से विवाद हो गया, तो उनके घर वालों ने शहर के घर से उन्हें बेदखल कर दिया। अब वे वृद्धाश्रम में रहते हैं। उनका कहना है कि वे किराए के मकान में भी रह सकते थे, लेकिन वहाँ कौन उन्हें समय पर खाना देता और कौन उनको समय पर दवा देता, इसलिए वे वृद्धाश्रम चले गए।

हमारे समाज में ऐसे लोग जिनके परिवार में अब उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है, वो भी अब वृद्धाश्रम में रहना पसंद करते हैं। जिन एकल परिवारों के बच्चे विदेश चले जाते हैं, उनके माता-पिता को यदि विदेश जाने का वीजा नहीं मिलता, तो ऐसे माता-पिता भी वृद्धाश्रमों में रहने के लिए चले जाते हैं। आजकल परिवार के सदस्यों में इतनी दूरियाँ हो गयी हैं कि विदेश जाने पर बच्चों को अपने परिवार की सुध नहीं रहती। कई उदाहरण तो ऐसे सामने आए हैं, जिसमें विदेश में रहने वाले बच्चों के माता-पिता गुजर गए और बच्चे उनके अंतिम दर्शन व अंतिम संस्कार के लिए भी समय पर नहीं पहुँचे। ऐसे में उनका अंतिम संस्कार वृद्धाश्रम वालों ने ही किया।

अब सवाल यह है कि क्या वृद्धाश्रम में रहने वाले बुजुर्ग मानसिक रूप से स्वस्थ व सामान्य रह पाते हैं? यदि कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए, तो वृद्धाश्रम भी निजी नर्सिंग होम की तरह ही कार्य करते हैं। अगर किसी के पास पैसा है, तो उसको प्राप्त होने वाली सुविधाऐं अलग होगी और जिसके पास कम पैसा है, उसे न्यूनतम सुविधाएँ मिलेंगी। हो सकता है कि ऐसे लोगों को चार-छः लोगों की ऐसी डोरमेट्री में रहना पड़े, जिसमें जगह कम हो। गर्मी में एसी या कूलर की सुविधा न हो, सिर्फ पंखा हो, समाचार सुनने या अपने पसंदीदा कार्यक्रम देखने के लिए उनके पास टीवी न हो।

ऐसे बुजुर्ग लोग जिनकी उम्र ७० या ७५ वर्ष से ज्यादा है और वे खुद से नहीं चल पाते हैं, तो ऐसे लोगों को व्हील चेयर पर रोजाना आधा घण्टा घुमाने वाला भी कोई चाहिए, फोन पर परिवार के सदस्यों से बात कराने वाला भी कोई चाहिए। नर्स समय पर उनकी जरूरतों का ध्यान रखे, यह भी जरूरी है। इस तरह की शारीरिक दिक्कतों के साथ-साथ बुजुर्ग लोगों को मानसिक दिक्कतें भी होती हैं। उन्हें अकेलापन काटता है और ज्यादातर बुजुर्ग अवसाद यानि डिप्रेशन के शिकार हो जाते हैं। वे किसी से बातचीत नहीं करते, उदास रहते हैं, परेशान रहते हैं। ऐसे में वृद्धाश्रमों को लेकर नए सिरे से सोचने की जरूरत है।

आजकल हमारे शहरों में फाइव स्टार होटलों की तरह ही वृद्धाश्रम भी बन गए हैं, लेकिन वे सामान्य लोगों की पहुँच से दूर हैं। इसके अलावा चाहे कितना भी

अच्छा अस्पताल या नर्सिंग होम हो, लेकिन फिर भी वह घर का विकल्प तो कभी नहीं हो सकता। अत: बेहतर यही है कि हमारा समाज अच्छे आवासीय आश्रमों के बारे में नए सिरे से विचार करे और यह सोचे कि वहाँ रहने वाले बुजुर्ग लोगों को आश्रम की बजाय घर जैसा माहौल कैसे मिले?

वृद्धाश्रम ऐसे होने चाहिए, जहाँ उन्हें थोड़ी आजादी हो, उनके मनोरंजन का भी वहाँ इंतजाम हो, उनके पढ़ने-लिखने, बाग-बगीचों में टहलने की भी व्यवस्था हो, उनके खान-पान के बेहतर विकल्प हों। उनके द्वारा यथासंभव कार्य करने की व्यवस्था हो, ध्यान-साधना हेतु भी उनके लिए माहौल हो। यदि ऐसा कुछ वृद्धाश्रमों में संभव हो सका, तो वहाँ रहने वाले बुजुर्गों का जीवन कुछ बेहतर हो सकता है।

हमारे समाज में वृद्धाश्रमों के होने का मामला बुजुर्गों के लिए उनके जीवन की अंतिम बेला का इंतजाम नहीं है, बल्कि जिन्दगी की सबसे उत्पादक उम्र पार कर चुके लोगों को एक सम्मानजनक जीवन देने की व्यवस्था का नाम है और वह भी ऐसे समाज में जहाँ सदियों से वृद्धजनों के सम्मान की परंपरा रही है। इसलिए जहाँ तक संभव हो, घर-परिवारों में ही वृद्धजनों का सम्मान के साथ रखरखाव होना चाहिए, उनकी देखभाल होनी चाहिए क्योंकि वे ही तो वास्तव में उस घर-परिवार के आधार हैं, उनकी सेवा व उनके आशीर्वाद से ही वह घर-परिवार सुखी हो सकता है, लेकिन जिन घरों के सदस्य अपने बुजुर्गों को साथ नहीं रखना चाहते, ऐसे में अंतिम विकल्प वृद्धाश्रम हो जाता है।

घर-परिवार वही सुखी है और वहीं स्वर्ग का निवास है जहाँ वृद्धजन सुखी हैं, संतुष्ट हैं और निरंतर अपना आशीष बरसाते हैं। जिन घरों में वृद्धजनों को पीड़ित व प्रताड़ित किया जाता है, उनका अपमान किया जाता है, उन घरों में सुख व शांति का निवास नहीं होता।

घर वही होता है, जहाँ परिवार के सदस्य मिलकर आपस में रहते हैं, एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हैं, एक-दूसरे की मदद करते हैं, इसलिए घर की जगह कोई भी वृद्धाश्रम नहीं ले सकता लेकिन फिर भी जो बुजुर्ग अब वृद्धाश्रमों में रहने के लिए मजबूर हैं, उनके लिए यदि वृद्धाश्रमों में घर जैसा माहौल निर्मित हो सके, तो वृद्धाश्रमों में रहने वाले लोगों को भी अपने घर की कमी महसूस नहीं होगी और वे वहाँ सुख-शांति से रह सकेंगे। ❑

एक बार महात्मा आनन्द स्वामी से किसी व्यक्ति ने आत्मदर्शन करा देने के लिए आग्रह किया। स्वामी जी ने उसे जब साधना, उपासना की बात कही तो वह झल्ला उठा। बोला कि 'आज के वैज्ञानिक युग में बटन दबाते ही प्रकाश का प्रकट हो जाना संभव हो गया है। अतः इस युग में आपकी बातों की कोई कीमत नहीं हो सकती।'

स्वामी जी ने उत्तर दिया-'भाई! बटन दबाते ही प्रकाश हो जाता है यह तो सच है परन्तु यह तभी संभव होता है जब बटन उस तार से संयुक्त हो जो बल्ब तथा पावर हाउस से संबंध बनाता है। इसी तरह आत्मदर्शन के लिए भी अपने मनरूपी तार को आत्मा रूपी पावरहाउस से जोड़ना पड़ता है और तब बटन दबाते ही आत्मज्योति प्रकट हो सकती है अन्यथा नहीं। विज्ञान की बात करते हो तो उसी पर पूरी आस्था रखो। विज्ञान बुरा नहीं आवश्यक है, परन्तु विज्ञान का अधकचरा ज्ञान पुरानी आस्थाओं को नकार देता है, नई आस्थाओं का निर्माण कर नहीं पाता इसीलिए वह अनिष्टकारक लगने लगता है।'

ईर्ष्यारूपी विष से बचना चाहें तो ऐसे बचें

ईर्ष्या एक घातक विष है, मनोविकार है। यह बहुत ही जहरीली और नकारात्मक भावना है। यह अंगीठी की उस आग की तरह है जो ईर्ष्यालु व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में सदैव जल रही होती है। अंतत: यह उस व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक ऊर्जा को लील कर उसे दुर्बल बना देती है जिससे व्यक्ति जीवन में कदम-कदम पर अपमान व असफलता का घूँट पीते रहने को विवश हो जाता है। ईर्ष्या व्यक्ति को आलसी, अकर्मण्य व निराशावादी बनाती है जिसके फलस्वरूप शक्ति, सामर्थ्य व प्रतिभा होते हुये भी वह जीवन में भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टि से दीन-दुर्बल ही बना रहता है।

ईर्ष्या मनुष्य की एक हीन भावना है जिसके कारण व्यक्ति यह सोचता है कि यदि हमारे पास वह वस्तु नहीं है तो किसी दूसरे के पास क्यों हो ? यदि हमें अमुक काम में सफलता नहीं मिली, तो किसी दूसरे को क्यों मिली ? वह दूसरों की अच्छाई से, सफलता से प्रेरणा लेने की बजाय हमेशा दूसरों के सुख-शांति, सफलता व समृद्धि को देख-देख कर जलता-भुनता रहता है। वह हमेशा यही सोचता है कि आगे बढ़ते लोगों की राह में रोड़ा कैसे बना जाये ? उनको कैसे नीचा दिखाया जाये। समाज में उनकी कैसे मजाक बने ? और कैसे उनकी खुशियाँ छीनी जायें ?

सच तो यह है कि दूसरों की राह में रोड़ा बनने से, दूसरों को नीचा देखने व दिखाने की फिराक में रहने से, दूसरों की खुशियाँ छीनने से कभी किसी व्यक्ति का भला नहीं होता बल्कि इससे उसके स्वयं की राह में ही रोड़े आने लगते हैं, वह स्वयं ही दूसरों के समक्ष मजाक का पात्र बनता है। अपने किये कराये पर अंतत: उसे स्वयं ही ग्लानि होती है जिससे उसके स्वयं की सुख-शांति जाती रहती है। उसकी स्वयं की खुशियाँ समाप्त हो जाती हैं और उसके स्वयं के जीवन में ही मरघट सा सन्नाटा पसर आता है। अत: जिस ईर्ष्या से हम दूसरों को जलाने निकलते हैं उससे हम स्वयं ही जलने लगते हैं।

ईर्ष्या करते वक्त हमारे दिमाग के स्नायु सिकुड़ते हैं, जिसका प्रभाव हमारे अंतर्मन पर पड़ता है और अंतत: उसका प्रभाव हमारे चिंतन, चरित्र, व्यवहार, स्वभाव और जीवनशैली पर भी पड़ता है। हम चिड़चिड़े हो जाते हैं और घर, परिवार का वातावरण भी कलहपूर्ण हो जाता है। वह व्यक्ति झगड़ालू हो जाता है। उसका कहीं कोई मित्र नहीं होता और जो होते भी हैं, वे उससे किनारा करने लगते हैं। फलत: घर-परिवार समाज में उसकी कहीं कोई इज्जत नहीं रह जाती। अंतत: वह स्वयं को अधूरा व अकेला पाकर निराशा और आत्मग्लानि से भर जाता है। अत: वह आत्मघात, आत्महत्या जैसे कदम उठाने को मजबूर हो जाता है।

ईर्ष्यालु व्यक्ति मानसिक रोगी तो होता ही है, उसका शरीर भी रुग्ण हो जाता है। उसका आत्मबल, आत्मविश्वास समाप्त हो जाते हैं। वह अंदर से बड़ा जर्जर हो जाता है। उसका ओज, तेज, वर्चस सभी समाप्त होते चले जाते हैं। उसके मुख पर सदा अपराधी की सी कालिमा छाई रहती है। उसके जीवन का सौन्दर्य, सुख, शांति आदि समाप्त हो जाते हैं। फलत: भौतिक व आध्यात्मिक दोनों दृष्टि से उसका पतन होने लगता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य ने ठीक ही कहा है कि ईर्ष्या व्यक्ति को उसी प्रकार खा जाती है जैसे कपड़े को कीड़ा।

ईर्ष्या के घातक प्रभाव व परिणाम को लेकर एक बहुत ही रोचक कथा है। एक बार एक महात्मा ने अपने शिष्यों से अनुरोध किया कि वे अगले दिन प्रवचन में आते समय अपने साथ एक थैली में बड़े आलू साथ लेकर आयें, और उन आलुओं पर उस व्यक्ति का नाम लिख कर लाऐं जिनसे वे ईर्ष्या करते हैं। जो व्यक्ति जितने व्यक्तियों से घृणा करता हो, वह उतने आलू लेकर आये। अगले दिन सभी

लोग आलू लेकर आये, किसी के पास चार आलू थे, किसी के पास छः या आठ और प्रत्येक आलू पर उस व्यक्ति का नाम लिखा था जिससे वे ईर्ष्या करते थे, घृणा करते थे, नफरत करते थे।

अब महात्मा जी ने कहा कि अगले सात दिनों तक ये आलू आप सदैव अपने साथ रखें और जहाँ भी जायें, खाते-पीते, सोते जागते, उठते-बैठते, हँसते-बोलते ये आलू आप सदैव अपने साथ रखें। शिष्यों को कुछ समझ में नहीं आया कि महात्मा जी आखिर ऐसा क्यों चाहते हैं। शिष्यों को महात्मा जी के आदेश का पालन तो करना ही था। सो महात्मा जी के आदेश का पालन सभी शिष्यों ने अक्षरशः किया। दो-तीन दिनों तक वे उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते अपने साथ आलूओं को ढोते रहे।

ऐसा करना उन्हें बड़ा विचित्र लग रहा था। जिनके पास जितने अधिक आलू थे वे उतने ही अधिक परेशान थे व कष्ट में थे। वे सभी शिष्य आपस में एक-दूसरे को अपनी कष्ट-कठिनाई बताने लगे। जैसे-तैसे उन्होंने सात दिन बिताये और आठवें दिन वे सभी महात्मा जी के शरण में पहुँचे। महात्मा जी ने कहा- अब अपनी-अपनी आलू की थैलियाँ निकालकर रख दें, शिष्यों ने चैन की साँस ली। महात्मा जी ने उन शिष्यों से पूछा, विगत सात दिनों का आप सबों का अनुभव कैसा रहा। शिष्यों ने महात्मा जी से अपनी आपबीती सुनाई। सबने अपने कष्टों का विवरण दिया, आलुओं की बदबू से होने वाली परेशानी के बारे में बताया।

सबने यही कहा कि उन आलूओं को सदा ढोते रहने की परेशानी से मुक्त होकर अब वे बड़ा हल्का महसूस कर रहे हैं। महात्मा जी ने कहा, मैंने आपको यही महसूस करने के लिये ऐसा करने को कहा था। जब मात्र सात दिनों में ही आपको ये आलू बदबू देने लगे, ये आलू बोझ लगने लगे, तब जरा सोचिए कि आप जिन व्यक्तियों से ईर्ष्या या नफरत करते हैं, उनका कितना बोझ आपके मन पर सदैव बना रहता होगा और वह बोझ आप लोग सारी जिन्दगी ढोते रहते हैं।

महात्मा जी आगे बोले- जरा सोचिये कि आपके मन और दिमाग की इस ईर्ष्या के बोझ से क्या हालत होती होगी। यह ईर्ष्या भी आपके मन पर अनावश्यक बोझ डालती है। उसके कारण आपके मन में भी बदबू भर जाती है, ठीक उन आलूओं की तरह। इसलिये आप सब अपने मन से ईर्ष्या जैसी नकारात्मक भावनाओं के बोझ को निकाल फेंकिए।

सभी शिष्यों को महात्मा जी की बातें समझ में आ गईं। वे सभी उनके चरणों में नतमस्तक हुये और उस दिन से ईर्ष्यामुक्त जीवन जीने की प्रेरणा व संकल्प लेकर अपने-अपने गंतव्य को चल दिये। हम सबों के लिये भी इस कहानी में एक अमूल्य प्रेरणा है, संदेश है। वह यह है कि ईर्ष्या के अनावश्यक बोझ को हम अपने मन मस्तिष्क पर क्यों ढोयें? ईर्ष्या जैसी अंगीठी की आग को मन-मस्तिष्क में रखकर हम स्वयं को क्यों जलायें? हम क्यों अपनी ऊर्जा का क्षरण कर अपने जीवन की हानि करें? प्रश्न उठता है कि ईर्ष्या के घातक विष से हम कैसे बचें?

ईर्ष्या से बचने का अमोघ उपाय यह है कि आप अपने आप पर पूरा भरोसा रखें। जैसा कि युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य ने कहा है कि 'विश्वास करें कि आप इस संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। इस विश्वास के बल पर आप दुनिया की हर बड़ी से बड़ी उपलब्धि को हासिल कर सकते हैं। दूसरा आप अपनी उन कमियों, कमजोरियों को पहचानें जो आपकी असफलता व असंतोष के कारण बने हैं, अथवा होंगे। आप ऊँची से ऊँची सफलता प्राप्त कर दूसरों के लिये आदर्श उदाहरण व प्रेरणा बनिये और साथ ही दूसरों को आगे बढ़ने अथवा बढ़ाने में अपना अमूल्य योगदान दीजिये। इससे आपके स्वयं के भीतर आत्मविश्वास, आत्मबल की भावना जागेगी जिससे न सिर्फ आपकी शक्ति सामर्थ्य पहले से भी कई गुना अधिक बढ़ी-चढ़ी होगी बल्कि आपको अपने ही जीवन में पहले से और अधिक बड़ी सफलता प्राप्त होगी। आपका आत्मसम्मान, आत्मगौरव बढ़ेगा जिससे आपको अपार आत्मिक आनंद की प्राप्ति होगी। घर-परिवार, समाज सब जगह आपका सम्मान होगा। इससे आप भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टि से लाभ ही लाभ में होंगे।'

इसके साथ ही आप ईश्वर की शरणागति लेकर नित्य ईश्वर की आराधना करें। करुणा, प्रेम, न्याय, सत्य, क्षमा आदि ईश्वरीय गुणों का सदैव स्मरण करते हुये उन्हें अपने अंतस में भी उतरने दें। हृदय में जब ईश्वर के प्रति परमप्रेम की भावनायें उमड़ने-घुमड़ने लगती हैं तब उस हृदय से, मन से, मस्तिष्क से ईर्ष्या, नफरत, घृणा आदि नकारात्मक भावनायें स्वयं ही तिरोहित हो जाती हैं और व्यक्ति के जीवन में आनंद ही आनंद का साम्राज्य छाने लगता है।

इसके अतिरिक्त आप अपनी दिनचर्या में स्वाध्याय को महत्त्वपूर्ण स्थान दें। नियमित स्वाध्याय के अंतर्गत आप महापुरुषों के महान जीवन प्रसंग पढ़कर उनसे प्रेरणा ग्रहण करें। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने तो स्वाध्याय को आत्मा का भोजन कहा है। स्वाध्याय के द्वारा हममें पवित्र भावनाओं का संचार होने लगता है, जिससे विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी हम सच्चाई के मार्ग पर, भलाई के मार्ग पर चलने का अदम्य साहस, संकल्प व धैर्य बनाये रख पाते हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण सूत्र यह है कि हम हमेशा सेवा की भावना से ओत-प्रोत रहें जिससे हम दूसरों की सेवा कर सकें और स्वयं को निश्छल, निष्कपट, निर्दोष बनाये रख सकें। नि:संदेह प्रेम और सेवा की पवित्र भावना से भरे हुये लोगों के जीवन में ईर्ष्या, घृणा, नफरत जैसी नकारात्मक भावनायें प्रवेश ही नहीं कर सकतीं। इस प्रकार हम ईर्ष्या के घातक विष से बच भी सकते हैं और साथ ही अपने जीवन को सुख, संतोष, शांति एवं आत्मिक आनंद से भर भी सकते हैं।

❑

एक बड़े प्रदेश के मुयमंत्री थे। वे एक प्रभावी वक्ता थे पर उनके मन में बहुत से दोष-दुर्गुण थे। समाज सेवा एवं सुधार के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध दिखाने में वे संकोच न करते। कोई पूछता तो वे कहते कि हम जनता के विचारों को जाग्रत एवं परिमार्जित करते हैं। उन्हें ठीक दिशा दिखाना और उन पर चलने की प्रेरणा देना हमारा काम है।

एक बार वे एक गाँव में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक वियात संत की चर्चा सुनी तो मंत्री जी भी दर्शन हेतु पहुँच गये। जाते ही साधु ने मंत्री जी गोबर उठाकर लाने की आज्ञा दी। मंत्री जी साधु के इस व्यवहार से बहुत खिन्न हो गये पर वे हँसकर उठे और किसी तरह गोबर उठा लाये। साधु बोले, 'इसे यहीं रख दो और वह पुस्तक उठाकर ले आओ, उसे पोंछ दो।' मंत्री बोले,'मै हाथ धो लूँ महाराज! पुस्तक में गोबर लग जायेगा, वह और भी गंदी हो जायेगी।'

साधु गंभीर स्वर में बोले, 'एक किताब उठाने में तो तुम यह देखते हो कि गंदे हाथों से किताब गंदी हो जायेगी किन्तु इतने बड़े समाज के दोष दूर करने चले हो, तुम अपने मन अंतस की गंदगी नहीं देखते हो? इस गंदे मन के साथ तुम जहाँ भी जाते हो, उतनी ही बुराई फैलाते हो।'

मंत्रीजी को साधु की महानता व अपनी क्षुद्रता का एहसास हो गया। पहले अपने दोष दूर करो तब समाज के दोष दूर करने चलो। वस्तुत:आत्म-साधना ही समाज सेवा की कुंजी है।

अवतार प्रक्रिया का रहस्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि लंबे समय से अपने लापता पति की खोज में शांतिकुंज पहुँची दामिनी ने उनके जल्द ही मिल जाने के पूज्यवर के दिए गए आश्वासन को अगले ही दिन सत्य हुआ पाया। शांतिकुंज परिसर में हुए मिलन के इस दुर्लभ संयोग को पूज्यवर की अनुकंपा मानते हुए वे दोनों अनुग्रहित हो पूज्य गुरुदेव से भावी जीवन के लिए उनका प्रत्यक्ष मार्गदर्शन लेकर खुशी-खुशी अपने घर को लौट गए। उन्हीं दिनों प्रसिद्ध योगी श्यामाचरण लाहिड़ी की परंपरा के श्री युक्तेश्वर गिरी के शिष्य जगदीश मुनि का शांतिकुंज आगमन हुआ। अपने गुरु के च्योतिष एवं काल मीमांसा के ज्ञान के अविज्ञात पक्ष को उन्होंने आश्रम के शिविरार्थियों के मध्य उद्घाटित किया व युग की अवधारणा की मूल रूप में व्याया की। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

ऋषि प्रसाद ने गुरु का निर्देश सुनते ही हरिद्वार जाने की मनोभूमि बना ली। समर्पित शिष्य की भाँति यह पूछने की जरूरत भी नहीं समझी कि हरिद्वार में किन संत के पास जाना है ? या किस आश्रम में ठहरना है ? गुरु ने भी नहीं बताया। इस निर्देश और स्वीकार के बाद चार पांच दिन तक प्रवचन, सत्संग और साधकों के आने जाने और स्वामी जी से उनकी भेंट मुलाकात की व्यवस्था करने आदि का क्रम चलता रहा।

नवरात्र पूरे होने के ठीक एक दिन पहले स्वामी जी ने ऋषि से कहा, कल का प्रवचन पूरा होने के बाद प्रस्थान करना है। हम लोग वृन्दावन जाएंगे और तुम राधिका रमण जी के साथ हरिद्वार चले जाना। यहाँ से सात आठ घंटे का सफर है। (उन दिनों सड़क मार्ग से इतना ही वक्त लगता था) राधिका जी तुम्हें मोटर गाड़ी से ले जायेंगे। दो तीन दिन वे भी हरिद्वार ऋषिकेश ही रहेंगे। लौटते हुए तुम्हें पूछेंगे। जिन के पास मैं भेज रहा हूँ, अनुमति दें तो वापस आ जाना। अन्यथा, जब तक वे कहें।

सुनकर ऋषि प्रसाद ने हां में सिर हिलाया। एक बार भी नहीं पूछा कि कहां जाना है ? तैयारी में क्या करना है ? वह अपने वस्त्र और सामान समेटने लगा। पता था कि कल प्रवचन का अंतिम दिन है, इसलिए सामान समेटने का वक्त नहीं मिलेगा। ऋषि को इसी तैयारी में रात के ग्यारह बज गये। आमतौर पर वह दस बजे तक सो जाता था। सुबह चार बजे उठना होता और दिन में विश्राम का वक्त नहीं मिलता, यों भी कह सकते है कि ब्रह्मचारी होने के कारण दिन में सोना निषिद्ध था। इसलिए आज थोड़ी देर हो गयी। वैसे भी शिष्य का जागना और सोना गुरु सेवा की श्रेणी में ही आता है। इसलिए देरी और जल्दी की क्या चिंता करना ? शरीर का अपना नियम है। वह उसी के अनुसार चलता है, इसलिए ऋषि को बिस्तर पर जाते ही नींद आ गई।

सुबह राधिकाजी ने आकर जगाया। ऋषि ने तैयारियाँ तो रात में ही कर ली थीं। आधा पौन घंटा नित्यकर्मों में लगा और हरिद्वार के लिए रवाना हो गया। रास्ते में राधिकाजी से कई विषयों पर चर्चा हुई लेकिन एक बार भी नहीं पूछा कि किन महापुरुष या सिद्ध संत के पास चल रहे हैं। खुद ऋषि का सरोकार अपने गुरु का आदेश पूरा करने से था और उसकी समझ थी कि वह पूरा हो रहा है तो ठीक है।

गुरु के प्रति इस निष्ठा से प्रेरित होकर ऋषि ने प्रवास और निवास के बारे में कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं समझी। तीन चार घंटे की यात्रा तो बातचीत में ही निकल गई। दिल्ली मेरठ का शहरी परिवेश पीछे छूटने लगा था और गंगा के स्पर्श वाला क्षेत्र शुरु हो गया था। आश्विन के इन दिनों में गर्मी भी विदा होने लगती है, सुबह शाम का तापमान गुलाबी शीतलता का आभास कराने लगता है। ऋषि भी गंगा क्षेत्र की शीतल हवाओं के स्पर्श के कारण तंद्रा अनुभव करने लगा था। उसकी पलकें अपने आप मुंद गई और लगा कि नींद उतर आई है लेकिन गाड़ी की आवाज, आसपास के दृश्यों और पास ही बैठे राधिका जी की उपस्थिति का बोध भी बना हुआ था। ऋषि अपने आप में खोया

हुआ चुपचाप अपनी सीट पर बैठा था-लगभग सोई हुई अवस्था में।

अर्धसुषुप्ति या तंद्रा की अवस्था में ही ऋषि ने अनुभव किया कि सड़क पर दौड़ रही गाड़ी के साथ जैसे कई घोड़े भी चल रहे हैं। चल क्या रहे हैं, दौड़ रहे हैं तभी तो वे खिड़की के बाहर गाड़ी के साथ साथ दिखाई दे रहे हैं। उन घोड़ों पर एक युवक सवार है। हाथ में तलवार लिये वह युवक राजोचित वेशभूषा में है। लगता था कोई सेनानायक या युवराज है। दृश्य को समझने के लिए ऋषि ने आँखें पूरी तरह खोली और सजग होकर देखा तो पाया कि बाहर कुछ नहीं था। पहले की तरह आते जाते वाहन और किनारे खड़े वृक्ष, उनके पीछे लहलहाते खेत थे। ऋषि ने समझा कि अभी जो दृश्य देखा था वह सपना ही था और टकटकी लगाकर बाहर देखने लगा। इस बीच राधिका जी को भी निहारा, वे भी सीट पर पीछे की तरफ सिर टिकाकर अधलेटी मुद्रा में सोये हुए थे।

कुछ पल बाहर देखते रहने के बाद ऋषि को फिर तंद्रा ने आ घेरा। इस बार अलग ही दृश्य दिखाई दिया। लगा जैसे आसपास कई यज्ञकुण्ड बने हुए हैं। उनमें अग्नि प्रदीप्त है और कुण्ड से उठते हुए धूम्र से लग रहा था कि अभी अभी आहुतियों का सत्र पूरा हुआ है। लोग प्रदीप्त अग्नि को सुरक्षित रखने का उपक्रम कर रहे हैं। दौड़ती हुई गाड़ी के साथ घोड़ों की पदचाप फिर सुनाई दी, लेकिन इस बार कोई अश्वारोही नहीं दिखाई दिया। कुछ समय इस दृश्य में रमे रहने के बाद ऋषि की तंद्रा टूटी तो वह अचकचा कर खिड़की के बाहर झांकने लगा। अब तक जो दिखाई दे रहा था, उसके चिह्न कहीं भी नहीं थे लेकिन जो प्रतीति बनी हुई थी, वह यथार्थ से भी ज्यादा अनुभव हो रही थी।

इन दृश्यों को समझने की कोशिश में ऋषि सोचने लगा था कि पिछला दृश्य और यह प्रतीति सिर्फ स्वप्न या मन की कल्पना नहीं है। निश्चित ही एक आध्यात्मिक अनुभूति है। गुरुदेव ने इन अनुभूतियों को जीने और संग्रहित करने के लिए ही शायद भेजा हो। कुछ ही पलों में ऋषि ने इस विवेचन को मन से झटक दिया और अपने गुरुदेव स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती का स्मरण करने लगा। इस बीच राधिकाजी की नींद भी टूट गई थी। वे सम्भल कर बैठ गए और ऋषि की तरफ देखने लगे। मुख मुद्रा देखकर लगा जैसे कुछ कहना चाह रहे हों। उन्हें देखकर ऋषि ने अपना अनुभव बाँटने का मन बनाया ही था कि राधिका जी ने पूछा, 'कमाल है। आपको भी कुछ विचित्र अनुभव हुआ है क्या?'

ऋषि ने पूछा कि किस तरह का अनुभव? इस पर राधिकाजी ने कहा कि मैं देख रहा हूं। इसी इलाके में आसपास के मैदान में युद्ध चल रहा है। स्त्रियां उस युद्ध में भाग ले रही हैं और आक्रमणकारियों को खदेड़ कर भगा रही हैं। उन सैनिक नारियों का नेतृत्व एक राजोचित वेशभूषा पहने एक राजपुरुष कर रहा है। अपने बचाव के लिए उसने कवच आदि कुछ भी धारण नहीं कर रखा है। उसकी उपस्थिति ही उन नारियों और उनका साथ दे रहे पुरुषों को प्रेरित कर रही है। इस विवरण को ऋषि ने गौर से सुना और बाद में अपने अनुभव भी बताये। राधिकाजी ने घुड़सवार राजपुरुष की आकृति के बारे में बताया और ऋषि से पूछा तो दोनों को बड़ी हैरानी हुई। दोनों द्वारा देखे गए राजपुरुषों में अद्भुत साम्य था। दोनों यह भी कह रहे थे कि दृश्यावलि मानस पटल पर किसी अलौकिक घटना की तरह आ जा रही थी।

आहुतियों की दिव्य गंध

तीसरा पहर शुरु होते तक राधिका जी और ऋषि हरिद्वार पहुँच गये। दोनों पहले भी इस नगरी में कई बार आ जा चुके थे। लेकिन इस बार पता नहीं क्यों लग रहा था कि शहर बदला बदला है। ज्वालापुर पार करते ही ऋषि और राधिका भी गाड़ी से बाहर झांकने लगे। बाद में दोनों ने एक दूसरे से पूछा और इस अनुभव की पुष्टि की कि इस क्षेत्र में यज्ञ में दी जा रही औषधि आहुतियों की गंध आ रही है। तीर्थनगरी है, हरिद्वार में आश्रमों की भरमार है इसलिए आहुतियों की गंध आना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दोनों को आश्चर्य इस बात पर हुआ कि हर की पौढ़ी से आगे ऋषिकेश मार्ग पर निकल जाते तक सुगंध आती रही लेकिन आसपास कोई बड़ा आयोजन होता नहीं दिखाई दिया। हर की पौड़ी से आगे निकलते हुए दोनों के मुख से बरबस निकला कि ऐसा पहले कभी अनुभव नहीं हुआ। अद्भुत गंध है जो दिव्य वनस्पतियों की

आहुतियों से ही आ सकती है। लेकिन आश्चर्य कि पिछले दस बारह किलोमीटर की यात्रा में इस तरह का आयोजन कहीं दिखाई नहीं दिया। बिना आयोजन के ही विराट यज्ञ में भागीदारी।

ऋषि को पल भर के लिए अपने गुरुदेव (स्वामी अखंडानंद सरस्वती) का सामीप्य अनुभव हुआ। लगा जैसे वे कह रहे थे कि जिस आध्यात्मिक सत्य के सम्बन्ध में तुम्हारे मन में उथल पुथल मचती रहती है, उसके समाधान का यही उपयुक्त समय है, और स्थान भी। उन सिद्ध संत से साक्षात्कार भी यहाँ हो जायेगा। इस सान्निध्य और उद्बोधन का अनुभव करते हुए राधिका जी और ऋषि शान्तिकुञ्ज में प्रवेश कर रहे थे।

आश्रम में नियमित शिविरार्थियों के अलावा नवरात्रि साधना कर रहे साधक थे। उपलब्ध आवास व्यवस्था उन शिविरार्थियों और साधकों के लिए कई बार अपर्याप्त होती थी। नवरात्रि अनुष्ठान के दिनों में तो जगह की तंगी और भी ज्यादा रहती थी। लेकिन दोनों आगन्तुकों के आने की सूचना जैसे पहले ही पहुँच गई थी और उनके लिए व्यवस्था पहले से ही थी। उन्हें ठहरने में जरा भी समय नहीं लगा। आधा पौन घंटे के लिए सुस्ताए ही होंगे कि गुरुदेव ने अपने पास बुला लिया। ऋषि को शान्तिकुञ्ज पहुँचकर प्रतीत हुआ कि उनके गुरु ने कहां भेजा है ? अपने गुरु के मुख से वह इस स्थान, क्षेत्र, विद्या परंपरा के अधिष्ठाता के बारे में यदा कदा सुनते रहते थे, लेकिन उस संस्थान की झलक पहली बार देखी थी। गुरुदेव के पास पहुँचकर दोनों ने श्रीचरणों में प्रणाम किया और अपने आने का उद्देश्य बताया। ऋषि को कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी। वह प्रणाम करके बैठे ही थे कि कुशल क्षेम के बाद राधिकाजी ने कहा, 'महाराज श्री ने ऋषि जी को कुछ समय के लिए आपके सान्निध्य में भेजा है। मैं दो चार दिन के लिए बाहर रहूँगा। लौटते आप आज्ञा देंगे और महाराज श्री कहेंगे तो मैं इन्हें वापस लेता जाऊंगा।'

गुरुदेव ने राधिकाजी से कुशलक्षेम पूछने और स्वामी अखंडानंदजी का स्मरण करते हुए राधिकाजी की बात सुनी। उन्होंने स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के सम्बन्ध में चर्चा की। उनका कुशल क्षेम पूछा और अपने प्रति उनके स्नेह का उल्लेख भी किया। सामान्य चर्चा के बाद उन्होंने बिना किसी संदर्भ के कहा, 'इन दिनों स्थितियां इतनी विषम और विकट हैं कि अवतारी सत्ता ही उन्हें साध और संभाल सकती है। भगवान अपनी प्रिय सृष्टि को ज्यादा समय तक हेय स्थिति में पड़े नहीं रहने देंगे। शास्त्रों और सिद्ध पुरुषों ने अवतार के लिए उपयुक्त समय और स्थितियों के लिए जो लक्षण बताये हैं, वे इन्हीं दिनों प्रकट होते दिखाई भी दे रहे हैं। कठिनाई एक ही है कि भगवान अपनी सूक्ष्म सत्ता को अवतारी रूप में प्रकट कर भी चुके हों तो पहचाने कौन? उसके लिए अंतर्दृष्टि और निर्मल विवेक चाहिए। अन्यथा भगवान राम और कृष्ण को भी लोगों ने साधारण मानव, वनचारी और ग्वालबाल कहा था।'

❑

गाँधीजी जब यरवदा जेल में कैद थे तो जेल सुपरिटेंडेंट ने उन्हें सभी आवश्यक सामान पहुँचाया। सरकार ने उनके खर्च के लिए 150 रुपये मासिक की व्यवस्था की थी। सुपरिटेंडेंट ने उसे बढ़ाकर 300 रुपये कर देने की सिफारिश भेजी और कहा- 'इतने बड़े नेता के लिए इतना तो होना ही चाहिए।'

गाँधीजी ने मात्र 35 रुपये मासिक में काम चलाया और कहा-'मुझे औसत भारतीय के स्तर का भी तो ध्यान रखना है।' इस आस्था ने गाँधीजी को राष्ट्र का बापू बना दिया।

भारत की सांस्कृतिक विरासत है नदियाँ

नदियाँ भारत की सांस्कृतिक विरासत हैं और भारत उन नदियों की संस्कृति का वारिस है। यहाँ की नदियाँ देश की जनता की आजीविका का स्थायी स्रोत होने के साथ-साथ जैव विविधता, पर्यावरण और पारिस्थितिक संतुलन की पोषक रही हैं। इन पुण्यदायिनी नदियों का ही यह प्रताप है कि जितनी विविधता भरी और उपजाऊ भूमि भारत में है- उतनी दुनिया में और कहीं नहीं है।

भारत के उत्तरी भाग को गंगा व यमुना नदी ने ही संसार का सबसे विस्तृत उर्वर क्षेत्र बनाया है, भारत का पश्चिम भाग अपनी पाँच नदियों के कारण पंचनद प्रदेश कहलाता है। ये पाँच नदियाँ हैं- सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब और झेलम। मध्यभारत का गौरव जहाँ- नर्मदा, ताप्ती, महानदी और सोन नदी है, वहीं भारत का दक्षिणी भाग कृष्णा, कावेरी और गोदावरी के कारण धन-धान्य से पोषित रहा है। भारत का उत्तर-पूर्वी भाग भला ब्रह्मपुत्र और तीस्ता के उपकारों को कैसे भूल सकता है और इन सबके बीच भी सैकड़ों ऐसी नदियाँ हैं, जो सदियों से देश के जन-गण के लिए प्राकृतिक संसाधन वैशिष्ट्य का काम करती आ रही हैं।

भारत की नदियों को चार समूहों में विशेष रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है- १. हिमालय से निकलने वाली नदियाँ, २. दक्षिण क्षेत्र से निकलने वाली नदियाँ, ३. तटवर्ती नदियाँ और ४. अन्तर्देशीय क्षेत्रों से बहती आ रही द्रोणी क्षेत्र की नदियाँ। इस तरह नदियों ने अपने जलप्रवाह से भारत की धरती को भली प्रकार सींचा है, इसे उर्वर बनाया है।

ये नदियाँ अपने साथ कुछ ऐसा प्रवाह लाती हैं, जिससे भूमि उपजाऊ होती है, इसकी हरियाली बढ़ती है, धरती समृद्ध होती है, धरती की जलसंपदा बढ़ती है और पर्यावरण में इसके कारण एक सामंजस्य व संतुलन स्थापित होता है। नदियों के प्रवाह के कारण ही धरती अन्न उपजाती है। इस तरह ये नदियाँ जलदायिनी होने के साथ-साथ अन्नदायिनी भी हैं, क्योंकि भूमि पर अन्न इन्हीं के कारण उपजता है, पोषक तत्वों से भरपूर होता है और इस अन्न को ग्रहण करके ही हमारा जीवन पोषित, समृद्ध व स्वस्थ होता है।

प्राचीनकाल से ही भारत की नदियों का देश के आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। देखा जाए तो सिन्धु तथा गंगा नदियों की घाटियों में ही विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यताओं- सिन्धु सभ्यता और आर्य सभ्यता का आविर्भाव हुआ। आज भी देश की सर्वाधिक जनसंख्या एवं कृषि का जमाव नदी घाटी क्षेत्रों में ही पाया जाता है। प्राचीन काल में व्यापारिक एवं यातायात सुविधा के कारण देश के अधिकांश नगर नदियों के किनारे ही विकसित हुए थे और आज भी देश के लगभग सभी धार्मिक स्थल किसी न किसी नदी से सम्बन्धित हैं और इनसे गहराई से जुड़े हुए हैं, क्योंकि नदियाँ हमें अपने जल से पवित्र करती हैं, हमारी प्यास बुझाती हैं, इसलिए ये सदैव से हमारे लिए वन्दनीय हैं।

इस तरह भारत की नदियाँ पूजित हैं तथा सम्मानित हैं। ये मात्र जलस्रोत का प्रवाह ही नहीं हैं, बल्कि मातृरूप में वंदित भी हैं। हमारा वैदिक और पौराणिक साहित्य नदियों की स्तुतियों से भरा पड़ा है। प्रत्येक नदी के स्तोत्र हैं, उनकी आरती व पूजा का विधान है लेकिन इन्हें प्रदूषित होने से बचाए रखने, इन्हें समृद्ध करने, सँवारने व स्वच्छ करने का विधान कहीं खो गया है।

वर्तमान में पूरी तरह से लुप्त हो चुकी सरस्वती नदी की स्तुतियाँ ऋग्वेद में वर्णित हैं। यदा-कदा सरस्वती नदी के प्रकट होने के व इसके अस्तित्व के प्रमाण सामने आते हैं, तो लोगों की उत्सुकता बढ़ जाती है और इस पर अन्वेषण भी प्रारंभ हो जाते हैं। लुप्त हो चुकी सरस्वती जैसी नदियों के पुनः प्रकट होने के लिए लोगों में इतनी उत्सकुता देखने को मिलती है, लेकिन वर्तमान में जो नदियाँ विलुप्ति की कगार पर पहुँच रही हैं, उनके पुनर्जीवन के लिए, उनको नवजीवन देने के लिए जिस भागीरथ प्रयास की जरूरत है, उसमें कम

लोग ही उत्साहित दिखते हैं, अन्यथा आज भारत की नदियों की दुर्दशा की यह स्थिति नहीं होती।

हमारे देश की कोई भी सांस्कृतिक गाथा नदियों के पुण्यधर्मी प्रवाह को बिसरा कर नहीं लिखी जा सकती, लेकिन अफसोस की बात यह है कि आज हम नदियों के महत्त्व को भूलकर कुछ ऐसे कदम उठा रहे हैं, जिनके कारण ये नदियाँ एक तरह से बर्बादी की कगार पर हैं। नदियों की इस दुर्दशा के कारण ही आज या तो कभी जल संकट छा जाता है या नदियों की बाढ़ का भीषण प्रकोप लोगों को झेलना पड़ता है। कहीं-कहीं नदियाँ इतनी प्रदूषित हो गयी हैं कि उनका जल पीने योग्य ही नहीं रह गया है।

नदियाँ के उद्गम स्थल क्षेत्रों से जुड़े जंगलों पर बड़ी तीव्र गति से आघात किया जा रहा है और वहाँ बड़ी मात्रा में पेड़ काटे जा रहे हैं। बड़ी सीधी-सी बात है कि जिन इलाकों में पेड़ कटान बहुत अधिक हो रहा हो, वहाँ का भू-जल स्तर भी बहुत तेजी से गिरता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जीवन को चलाने के लिए कारोबार जरूरी है, लेकिन जिस कारोबार को चलाने से जीवन ही भविष्य में संकट में दिखे, उस पर विचार करना जरूरी है।

नदियों के जल से ही पेड़-पौधे उगते हैं, भूमि में नमी रहती है, भूजल का स्तर बढ़ता है और ये पेड़-पौधे भूमि में जलस्तर बनाए रखने में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। आज जिन पेड़ों को हम काट रहे हैं, वो न जाने कब से भूजल, खनिजतत्व आदि से पोषित होकर व धरती को पोषित करते हुए अपने अस्तित्व में हैं। यदि हम उनको काट रहे हैं, तो हमारा यह दायित्व बनता है कि हम उनकी क्षतिपूर्ति हेतु, उनके बदले अन्य दूसरे पेड़-पौधे लगाऐं, क्योंकि वास्तविक तथ्य तो यह है कि यदि किसी क्षेत्र में पेड़-पौधों को नष्ट करने का कार्यक्रम आरंभ कर दिया जाए और वहाँ की जमीन वीरान बना दी जाए, तो उस जगह में भूजल का स्तर भी अपने आप घटना शुरु हो जाएगा और यदि उन जगहों के आसपास नदियाँ बहती हैं, तो उनका भी जीवन धीरे-धीरे संकट में आएगा।

इस प्रकृति में एक व्यवस्था है, यदि हम किसी को पोषित करते हैं, तो वो भी हमें पोषित करता है, लेकिन यदि हम किसी का अस्तित्व समाप्त करते हैं, तो उन पर आश्रित तत्वों का अस्तित्व तो समाप्त होता ही है, साथ ही उसके कारण हमारे अस्तित्व पर भी प्रश्न-चिह्न लगने लगता है।

यदि हमें अपने जीवन को बचाना है, संवारना है, तो हमें अपने आस-पास के पर्यावरण, जीव-जंतु व जलसंपदा को भली प्रकार संरक्षित करना होगा, क्योंकि सभी एक-दूसरे पर आश्रित हैं और इसके लिए बड़ा सरल पहला उपाय है- पेड़-पौधे लगाना और दूसरा-नदियों को प्रदूषित करने वाले सभी कारकों पर रोक लगाना, इन्हें प्रदूषण से मुक्त करना और इनके संरक्षण का उपाय करना।

यदि हम केवल अपनी जल-संस्कृति को संवार पाए और इसे समृद्ध करने की ओर जुट गए, तो अपने आप इस पर आश्रित अन्य तत्व समृद्ध हो जाएँगे। इसलिए अगर हम भारत के नागरिक यहाँ की जल-संस्कृति के वारिस बने रहना चाहते हैं तो हमें नदियों, तालाबों, जोहड़ों, डबरों, बावड़ियों, कुँओं और अन्य जलस्रोतों को पुनर्जीवित करने का प्रण लेना ही होगा। ❑

हमें अपने लिए किसी उपलब्धि की अपेक्षा नहीं है। यहाँ तक की स्वर्ग-मुक्ति भी हमें नहीं चाहिए। जो अंतःभूमि उपलब्ध है वह अपने आप में अमृत जैसी मधुर और प्रकाश जैसी निर्मल है। उसे पाकर और कुछ पाने को इस पंचतत्त्वों से बने संसार में शेष भी क्या रह जाता है? कल्पना के नाम पर यदि कुछ शेष है तो उसमें देश, धर्म, समाज, संस्कृति के उत्कर्ष के अतिरिक्त व्यक्तिगत आकांक्षा एक ही है कि अपने प्रिय परिजनों के लिए कुछ ऐसे उपहार दे सकने में समर्थ हों जो उनके आँसू पोंछने और मुस्कान बढ़ाने के लिए कारगर सिद्ध हों।

-परमपूज्य गुरुदेव

विकासात्मक पत्रकारिता का विवेचनात्मक अध्ययन

मानव जीवन बहुआयामी है। उसमें विकास की अपरिमित सम्भावनाऐं एवं सामर्थ्य मौजूद हैं। मानव जीवन की निरन्तर गतिशीलता और परिवर्तन को उसके विकास रूपी मानदण्ड से मापा जाता रहा है। जीवन का एक पक्ष- आन्तरिक और दूसरा बाह्य है। इन दोनों में सामंजस्य और उच्चता से विकास परिभाषित होता है लेकिन वर्तमान सन्दर्भ में विकास शब्द का प्रचलन राष्ट्रीय, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न रूपों में किया जाने लगा है। विशेषकर उस मानव समाज के लिए विकास को मूलभूत आवश्यकता समझा गया है- जहाँ गरीबी, भूख, बेरोजगारी, बुनियादी सुविधाओं की कमी और सामाजिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक पिछड़ापन मौजूद है।

मानव समाज की इन समस्याओं के निवारण एवं जीवन स्तर को आगे बढ़ाने के लिए देश, समाज एवं कल्याणकारी संस्थाओं द्वारा विकास की अनेक योजनायें व प्रयास किये जाते हैं। विकास की इन नीतियों, योजनाओं एवं साधनों के प्रति जनजागरूकता के कार्य में जनसंचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ऐसे जनसंचार माध्यमों के अध्ययन को विकास पत्रकारिता का नाम दिया गया है। भारतीय पत्रकारिता में विकास पत्रकारिता के स्वरूप एवं इस दिशा में किये जा रहे कार्यों की वस्तुस्थिति व भावी संभावनाओं की खोज हेतु देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अन्तर्गत एक विशेष शोधकार्य सन् २०१७ में सम्पन्न किया गया है।

यह शोध कार्य शोधार्थी प्रतिभा कटियार द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ. अजय भारद्वाज के निर्देशन तथा डॉ. अरविन्द कुमार सिंह के सह निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध अनुसंधान का विषय है- **'विकासात्मक पत्रकारिता के सन्दर्भ में भारतीय प्रिन्ट मीडिया का रुझान- एक विवेचनात्मक अध्ययन।'** इस अध्ययन को कुल सात अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय 'विषय प्रवेश' है। इसके अन्तर्गत शोध विषय की आवश्यकता, महत्त्व, उद्देश्य, शोध विधि आदि बिन्दुओं की विवेचना की गई है। प्रिंट मीडिया जैसे- समाचार पत्र-पत्रिकाओं को मानव समाज के विकास हेतु एक सशक्त उपकरण के रूप में समझा जाता है, परन्तु वर्तमान परिदृश्य में यह जनसंचार माध्यम राष्ट्रव्यापी एवं सामाजिक विकास के चिन्तन से परे सामाजिक मनोरंजन एवं दैनन्दिन घटनाओं की जानकारी पर अधिक केन्द्रित दिखाई देते हैं।

समाचार पत्रों में विकास से सम्बन्धित विषयों पर गहनता से अध्ययन एवं अनुसंधान की आवश्यकता है। इसी दिशा में पहल करते हुये यह शोध अध्ययन दैनिक समाचार पत्रों एवं मासिक पत्रिकाओं में विकास पत्रकारिता का अवलोकन, परीक्षण व मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इसके लिए शोधार्थी ने दो हिन्दी व दो अंग्रेजी के दैनिक समाचार पत्रों तथा दो मासिक पत्रिकाओं का चयन कर उन्हें पढ़ने वाले पाठकों से एक माह के तथ्यों को प्राप्त कर अध्ययन कार्य का विवेचन किया है।

द्वितीय अध्याय है-'विकास की अवधारणा एवं संगत परिभाषाएँ।' इसके अन्तर्गत विकास से सम्बन्धित विविध आयामों एवं शब्दावलियों का विवेचन करते हुये विकास की संकल्पनाओं व वैश्विक परिदृश्य में विकास एवं जनसंचार के अन्तर्सम्बन्धों को प्रस्तुत किया है। विकास के आयामों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सतत विकास, समग्र विकास, मानव विकास आदि की चर्चा की जाती है, परन्तु विकास की अवधारणा के मुख्य केन्द्र में आर्थिक विकास ही होता है।

आर्थिक विकास में आय-व्यय, शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता आदि पहलू समाहित हैं। विकास के इन्हीं पक्षों को राष्ट्रीय स्तर पर समावेशी विकास कहा गया है; जिसमें सभी का हित, सुख और न्याय भी सम्मिलित हैं। विकास की दृष्टि से उठाये गये कदमों एवं प्रयासों तथा उचित तथ्यात्मक जानकारी के प्रचार-प्रसार में संचार तंत्र ने अनेक तरह से असंतुलन पैदा कर भ्रामक और विकृत सूचनाऐं देने का कार्य

किया है जिसके फलस्वरूप मानव समाज को पूरे विश्व में पश्चिमी दुनिया, पहली दुनिया, दूसरी दुनिया, तीसरी दुनिया आदि में विभाजित कर दिया गया है। अब इसी संचार तंत्र पर दुनिया को विकसित करने के लिए निष्पक्ष और शांतिपूर्ण वातावरण के निर्माण की जिम्मेदारी है।

तृतीय अध्याय है-'विकास संचार एवं विकास पत्रकारिता।' इस अध्याय के अन्तर्गत विकास संचार का अर्थ, उद्देश्य, सिद्धांत एवं भारत में विकास संचार की आवश्यकता व विकास पत्रकारिता की विवेचना की गई है। मानव जीवन एवं समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए योजनाबद्ध तरीके से अपनायी गई संचार की प्रक्रियाओं, रणनीतियों, सिद्धांतों को विकास संचार कहा जाता है। इसमें प्रेरित एवं विकसित होने के लिए उचित जानकारी को प्रभावी ढंग से व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।

भारत में विकास संचार का संगठित स्वरूप १९४० के दशक से रेडियो प्रसारण के माध्यम से प्रारम्भ हुआ था जिसे दूरदर्शन ने और अधिक व्यापक और प्रभावी बना दिया लेकिन वर्तमान में भी भारतीय समाज में विकास संचार की आवश्यकता है क्योंकि अभी भी यहाँ के अनेक क्षेत्र बुनियादी सुविधाओं-योजनाओं से वंचित हैं एवं जागरूकता की कमी के कारण विकास की दृष्टि से पिछड़े हैं। विकास संचार के अन्तर्गत विकास पत्रकारिता की भूमिका इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मानी गई है। विश्व के विकासशील देशों में सामाजिक विकास व सुधार के लिए विकास पत्रकारिता को एक प्रमुख उपकरण माना जाता है। विकास पत्रकारिता में आर्थिक, मुद्दे, कृषि, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, चिकित्सा, शिक्षा, रोजगार, सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यावरण, लैंगिक समानता, आवास, शहरी एवं ग्रामीण विकास जैसी समस्याओं पर केन्द्रित समाचारों का प्रकाशन किया जाता है।

चतुर्थ अध्याय है-'प्रिंट मीडिया और उसका व्यापक स्वरूप।' इस अध्याय में भारतीय प्रेस की स्थिति, प्रमुख भारतीय प्रकाशन गृह और उनके प्रकाशनों का विवेचन करते हुये समीक्षात्मक दृष्टि से प्रिंट मीडिया के विस्तृत स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। भारत में सरकारी प्रकाशनों की संख्या जहाँ केन्द्र और राज्यों को मिलाकर ५१ है तो वहीं अन्य निजी व संस्थागत प्रकाशनों की संख्या लाखों में है। इससे संबंधित जानकारी को शोधार्थी ने तथ्यात्मक रूप से आँकड़ों के साथ प्रस्तुत किया है। भारतीय प्रकाशन संस्थानों का इतिहास पुराना है। इनमें लगभग ४१ मीडिया संस्थान ऐसे हैं, जो अपनी स्थापना के १०० वर्ष पूरे कर चुके हैं। इस शोध अध्याय में १६ प्रमुख भारतीय मीडिया संस्थानों एवं उनसे प्रकाशित विभिन्न भाषाओं के पत्र-पत्रिकाओं की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

पंचम अध्याय है-'प्रिंट मीडिया एवं विकासात्मक पत्रकारिता।' इस अध्याय के अन्तर्गत समाचार पत्र-पत्रिकाओं की जानकारी एवं अध्ययन में चयनित दैनिक समाचार पत्रों व मासिक पत्रिकाओं की विषय सामग्री का विवेचन एवं विकास पत्रकारिता की दृष्टि से उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। पत्रिकाओं में योजना एवं कुरुक्षेत्र की विषयवस्तु को चयनित किया गया, जिसमें अध्ययन द्वारा यह ज्ञात हुआ कि दोनों में विकास के विभिन्न विषयों से सम्बन्धित आलेख और रिपोर्ट का नियमित प्रकाशन होता है, जिससे उन विषयों से सम्बन्धित गहन विश्लेषण व समझ का निर्माण होता है। इनका प्रत्येक अंक किसी विशेष विषय पर केन्द्रित होता है एवं पाठक में उस विषय को समझने की व्यापक दृष्टि व उपयोगी प्रेरणायें प्रदान करता है।

षष्ठम् अध्याय है- 'विकास के प्रमुख मुद्दे-साक्षात्कार व विचार विमर्श।' इस अध्याय के अन्तर्गत विकास के महत्त्वपूर्ण पक्षों और चुनौतियों से सम्बन्धित प्रश्नों को लेकर शोधार्थी ने कुछ विशेष लोगों के साक्षात्कार कर उनसे हुये विचार विमर्श को प्रस्तुत किया है। जिनको साक्षात्कार में सम्मिलित किया गया; वे हैं- पी. साईनाथ, गोविन्दाचार्य जी, श्री केसर रिवरकीपर, नवदान्या गैर सरकारी संगठन और सृजन पाल सिंह।

सप्तम अध्याय है-'उपसंहार।' इस अध्याय में शोध कार्य का निष्कर्ष, महत्त्व, उपादेयता और सुझाव को प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन भारतीय प्रिंट मीडिया के विकासात्मक पत्रकारिता की दिशा में बढ़ते रुझान और महत्त्व को सामने लाने हेतु किया गया है। भारत में विकास के बहुआयामी प्रकल्प और अवसर मौजूद हैं, साथ ही समाज के बहुत बड़े वर्ग को इन विकासात्मक योजनाओं की अत्यन्त आवश्यकता भी है। ऐसे में प्रिंट मीडिया ही वह कारगर माध्यम हो सकता है जो जन सामान्य की बातें सरकार तक और विकास योजनाओं की जानकारी लोगों तक सही रूप में पहुँचा सके। इस तरह प्रिंट मीडिया अपनी विकासात्मक पत्रकारिता के विकास-विस्तार के प्रयासों से देश एवं समाज के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी और भागीदारी का निर्वाह कर सकता है। ❑

कर्मों की खेती

संत कबीरदास जी कहते हैं-

दुख में सुमिरन सब करैं,
सुख में करे न कोय।
सुख में सुमिरन जो करै,
दुख काहे को होय॥

हम दु:ख में तो पुण्य बटोरते हैं कि क्या-क्या अच्छे कर्म करें, जिससे हमारा दु:ख कम हो जाए लेकिन जब सुख होता है तब हम ये शुभ कर्म करना भूल जाते हैं।

सुख में हम पुण्य कर्म करना भूल जाते हैं। पहले तो हमें शुभ कर्म करना आना चाहिए यानि पहले हमें अपने चित्तभूमि रूपी खेत को अपने पुण्य कर्मों से उर्वर बनाना आना चाहिए। किसान कभी भी अपने खेत की उर्वरता को कम नहीं होने देता, बल्कि इसमें निरंतर बढ़ोत्तरी करता है।

आमतौर से किसान रबी व खरीफ की फसलें उगाते हैं और ग्रीष्म ऋतु में अपने खेतों को यूँ ही छोड़ देते हैं लेकिन जो समझदार किसान होते हैं वो अपने खेतों से तीनों फसलें (खरीफ, रबी व जायद की फसल) लेते हैं और खेत की उर्वरता भी कम नहीं होने देते, बल्कि इसे निरंतर बढ़ाते हैं। जो समझदार किसान होते हैं, वो रासायनिक खादों पर भरोसा नहीं करते हैं, वो भरोसा करते हैं ऑर्गेनिक खाद पर, कंपोस्ट खाद पर, गोबर की खाद पर।

यही बात हमारे कर्मों पर भी लागू होती है। कई बार हमारे जीवन में टोना-टोटका फल जाते हैं। कई बार हमारे जीवन में तंत्र-मंत्र भी फल जाता है लेकिन ये तंत्र-मंत्र, टोना-टोटका रासायनिक खाद की तरह से है। ये हमारे जीवन में फलते नहीं हैं क्योंकि हमारे जीवन में केवल हमारा पुण्य कर्म ही फलित होता है। लोगों को यह भ्रम होता है कि इस विधि से हमारा कार्य जल्दी हो गया, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता।

जब भारत स्वतंत्र हुआ और देश में केमिकल फर्टिलाइजर आए। आरंभ में लोगों ने बहुत उत्साह के साथ केमिकल फर्टिलाइजर का प्रयोग किया, क्योंकि इससे उनकी पैदावार पहले से ज्यादा हो रही थी। स्वाधीनता के बाद साठ के दशक से सत्तर के दशक तक, विशेष रूप से सन् १९६५ से लेकर सन् १९७५ तक खूब रासायनिक खादों का दौर चला लेकिन जब इन दस वर्षों में भूमि बंजर होने लगी तब लोगों को फिर से ऑर्गेनिक खादों की याद आयी क्योंकि केमिकल फर्टिलाइजर के प्रयोगों से खेतों ने फसल ही देना बंद कर दिया था।

जिस खेत के एक बीघे में चालीस क्विंटल गेहूँ पैदा होता था, उसमें जब गेहूँ की फसल घट करके बीस क्विंटल रह गयी, पंद्रह क्विंटल रह गयी तो लोगों ने पूछना शुरू किया कि ये अचानक कैसे हो गया? वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया तो पाया कि रासायनिक खादों ने खेतों की उर्वरता छीन ली है क्योंकि हमने गोबर की खाद नहीं डाली, हमने कंपोस्ट खाद नहीं डाली। इस तरह हम फिर से अपने खेतों की उर्वरता बढ़ाने के पुराने तौर-तरीकों की ओर लौट कर आए।

जब जंगल बहुत तेजी से कटने लगे, तो लोगों ने इसके विकल्प के तौर पर पेड़ लगाने शुरु किए और उसमें भी बहुत ज्यादा संख्या में यूकेलिप्टस के पेड़ लगाए गए। जब यूकेलिप्टस के पेड़ लगे तो इससे क्या हुआ- खेतों की सारी नमी चली गयी। इससे पेड़ तो बढ़ गए लेकिन खेतों का पानी सूख गया। जमीन में पानी का स्तर नीचे चला गया। तब हमें समझ में आया कि प्रकृति को समझने के लिए केवल एक कारक जरूरी नहीं है, बल्कि इसमें बहुत सारे कारक शामिल हैं। वैज्ञानिकों ने इसी को बायोडायवर्सिटी कहा।

हमारे जीवन की भी यही स्थिति है। इसलिए पहले हम शुभ कर्म करना सीखें और फिर हम शुद्ध कर्म करना सीखें। हमारे पुण्य और तप का सिलसिला कभी कम नहीं होना चाहिए, इसलिए शुभ कर्म जितने किए जाएँ, उतना अच्छा और जितने ज्यादा किए जाएँ, उतना कम और अशुभ कर्म जितने कम किए जाएँ, उतना ज्यादा।

कई ऐसी पीढ़ियाँ हैं, कई ऐसे परिवार हैं, जो अपने शुभ कर्मों के कारण, पुण्य कर्मों के कारण आज भी फलफूल रहे हैं। जैसे हम देखते हैं कि घनश्याम

दास बिड़ला ने थोड़े पैसों से अपना व्यापार शुरु किया था, टाटा ने भी बहुत थोड़े साधनों से अपनी शुरुआत की थी लेकिन आज भी ये घराने चल रहे हैं। क्यों? क्योंकि उनके साथ पुण्य कर्मों की ऐसी परंपरा जुड़ी हुई है, जिसे वो आज भी बरकरार रखे हैं। इसलिए हम भी पहले अपने शुभ कर्मों की पूंजी बढ़ाएँ, तप की पूँजी बढ़ाएँ। निरंतर शुभ कर्म व तप अर्जित करें और अपनी चित्तभूमि को कभी बंजर न होने दें।

हमारे जीवन में शुभ कर्म निरंतर और अनवरत होते रहें, इसके लिए हमारी भारतीय सभ्यता व संस्कृति में अनेकों व्रत-पर्व व अनुष्ठान हैं। सोचने वाली बात है कि हमारी भारतीय संस्कृति में इतने सारे व्रत-उपवास व पर्व-त्यौहार क्यों हैं ताकि हर व्रत-उपवास के साथ, हर पर्व-त्यौहार के साथ जुड़कर हम पुण्य व तप की परंपरा से जुड़े रहें। हर व्रत, हर पर्व अपने साथ तप का सिलसिला लाता है। हमारी संस्कृति में इतने व्रत हैं ताकि इनके माध्यम से हमारा तप क्षीण न होने पाए और हमारे तप की पूँजी बढ़ती रहे।

हमारी संस्कृति तप क्षीण होने में, पुण्य क्षीण होने में कभी विश्वास नहीं रखती। हमारे पास सौ तरीके हैं, जिनसे हम अपनी तप की पूंजी बढ़ाते हैं और पुण्य कर्मों का संचय करते हैं। जैसे- हम दान देते हैं, कन्याभोज करते हैं। पितर पक्ष आता है तो पितरों के निमित्त श्राद्ध-तर्पण करते हैं, पंचबलि के नाम पर गौओं को, कौओं को, कुत्तों को, चीटियों को और ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं। ये सब हम क्यों करते हैं? ताकि हमारे पुण्य कर्म क्षीण न होने पाऐं।

पुण्य कर्म इतने जरूरी क्यों हैं? क्योंकि जब ये पुण्य कर्म हमारे चित्त में संग्रहित होते हैं, तो इससे चित्तभूमि की उर्वरता बढ़ती है और इससे हमारे थोड़े से पुण्य कर्म भी अधिक मात्रा में अपना फल देते हैं। जिस तरह हर खेत की फसल अच्छी नहीं होती, हर खेत में गेहूँ-धान की पैदावार बराबर नहीं होती। किसी खेत में कम फसल होती है तो किसी में ज्यादा। ऐसा क्यों?

ऐसा इसलिए क्योंकि खेत की फसल इस बात पर निर्भर करती है कि खेत की वर्तमान स्थिति क्या है? उसकी मिट्टी कैसी है? उसकी नमी कैसी है? उसकी उर्वरता कैसी है? उसमें खरपतवार तो नहीं आयी? उसकी जुताई, निराई, सिंचाई कैसी है? खेत में सब कुछ अच्छा है, लेकिन यदि निराई, गुड़ाई नहीं हुई तो खरपतवार के कारण फसल कमजोर होगी। ये जो बात है, निराई-गुड़ाई, ये हमारा विवेक है। इसी विवेक के माध्यम से हम देखते हैं कि कहीं हमारे विचार में, हमारे कर्म में कोई दोष तो नहीं उग रहा। कहीं हमारा कर्म रजोगुणी, तमोगुणी तो नहीं हो रहा, और फिर हम सम्भल कर अपने कर्म को करते हैं।

शुभ व अशुभ कर्म बीज की तरह होते हैं, जो चित्तभूमि में बोए जाते हैं और समयानुसार फलित होते हैं। शुभ कर्म अपना शुभ परिणाम देते हैं और अशुभ कर्म अपना अशुभ फल देते हैं। शुभ कर्म करने से न केवल शुभ फल प्राप्त होता है, बल्कि इससे हमारी चित्तभूमि भी उर्वर होती है और तप की पूंजी से भी हमारी चित्तभूमि उर्वर होने के साथ-साथ पुण्यकर्मों को भी संजोती है। इसलिए जीवन को सुखी, सफल व समृद्ध बनाने के लिए शुभ कर्म व तप की अनवरत शृंखला जरूरी है।

वहीं यदि जीवन में अशुभ कर्मों की शृंखला बढ़ जाए, तो धीरे-धीरे हमारी चित्तभूमि बंजर होने लगती है, यानि उससे शुभ फल प्रकट होने बंद हो जाते हैं। फिर उसमें ऐसी फसल पैदा होती है, जो हमारे लिए तो अहितकर होती ही है, साथ ही उससे दूसरों का भी अहित होता है। इसलिए हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे चित्तभूमि की उर्वरता पुण्य व तप कर्मों के संचय से निरंतर बढ़ती रहे।

❑

नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि। तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति॥

अर्थात्- सैंकड़ों बाणों से विध जाने पर भी समय आए बिना कोई नहीं मरता। समय आ जाने पर तिनके से चोट खा जाने वाला भी मर जाता है।

पुरुषोत्तम रूप को जानने वाला ही होता है सच्चा भक्त

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग नामक पन्द्रहवें अध्याय की अठारहवीं किश्त)

[विगत किश्त में श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग नामक पंद्रहवें अध्याय के अठारहवें श्लोक पर चर्चा चल रही थी। उस सूत्र में श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से उत्तम हूँ, इसीलिए लोक में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। यहाँ श्रीभगवान् कहते हैं कि क्षर और अक्षर की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है परंतु परमात्मा की स्वतंत्र सत्ता है। क्षर और अक्षर दोनों वस्तुतः परमात्मा में ही रहते हैं परंतु अक्षर अर्थात् जीव क्षर के साथ संबंध जोड़ कर स्वयं को उसके अधीन समझने लगता है परन्तु परमात्मा कभी क्षर के अधीन नहीं होते इसलिए वे सदैव क्षर से अतीत रहते हैं। इसी कारण से श्रीभगवान् स्वयं को अक्षर से उत्तम कहते हैं। यदि जीव भी जगत के साथ संबंध तोड़कर पुरुषोत्तम के साथ संबंध जोड़ ले तो वह परमात्मा से अभिन्न हो जाएगा। वे ही पुरुषोत्तम हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान् अपना अगला सूत्र कहते हैं कि-

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥१९॥

शब्दविग्रह- यः, माम्, एवम्, असम्मूढ़ः, जानाति, पुरुषोत्तमम्, सः, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत॥१९॥

शब्दार्थ-हे भारत! (भारत), जो (यः), ज्ञानी पुरुष **(असम्मूढ़ः)**, मुझको **(माम्)**, इस प्रकार (तत्त्व से)**(एवम्)**, पुरुषोत्तम **(पुरुषोत्तमम्)**, जानता है **(जानाति)**, वह**(सः)**, सर्वज्ञ पुरुष **(सर्ववित्)**, सब प्रकार से निरन्तर **(सर्वभावेन)**, मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही **(माम्)**, भजता है **(भजति)**।

अर्थात् हे भरतवंशी अर्जुन! इस प्रकार जो मोहरहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है। भगवान श्रीकृष्ण यहाँ कह रहे हैं कि जब साधक का चित्त क्षर से परे चले जाता है और वह परमात्मा के परमेश्वर स्वरूप में, पुरुषोत्तम स्वरूप में निमग्न हो जाता है और तब उस अवस्था में उसकी प्रत्येक गतिविधि भगवान का भजन बन जाती है। श्रीमद्भागवत् में ऐसे भी भक्तों की प्रशंसा करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि-

न तथा मे प्रियतम आत्मयो निर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीनैवात्मा च यथा भवान्॥
(श्रीमद्भागवत् -११/१४/१५)

अर्थात् मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, श्री बलराम जी, श्री लक्ष्मी जी भी नहीं हैं। अधिक क्या, मेरी स्वयं की आत्मा भी मुझे इतनी प्रिय नहीं है।

सही ही है। जिसका संपूर्ण जीवन पुरुषोत्तम को समर्पित हो गया, जो संशय, विपर्यय आदि दोषों से मुक्त होने के कारण असम्मूढ़ हो गया हो, जो साक्षात् सर्वशक्तिमान परमेश्वर पुरुषोत्तम के यथार्थ स्वरूप से परिचित है- वही सर्वविद् अर्थात् सर्वज्ञ है। जिसने पुरुषोत्तम को नहीं जाना, उसका सब कुछ जानना व्यर्थ ही है। भगवान को पुरुषोत्तम समझने वाला संसार के मोहजाल से अपने मन को हटाकर केवल परमात्मा के पुरुषोत्तम रूप का ध्यान करता है, अपनी बुद्धि से भी मात्र भगवान के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, लीला और महिमा का चिंतन करता है, कानों से उनके ही विषय में श्रवण करता है, वाणी से उन्हीं का कीर्तन करता है, उनकी आज्ञा को ही सब कुछ मान कर उन्हीं का भजन करता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि जो इस भांति पुरुषोत्तम का ध्यान करता है वही सही तरह से एवं सब प्रकार से उनको भजता है।

इस तरह के एक भक्त का नाम कण्णध था। उसके पिता दक्षिण भारत के एक कबीले के सरदार थे। उनका नाम था-नाग। उसकी माँ का नाम तत्ता था। उसके माता-पिता ने उसको जन्म के समय तिण्ण नाम दिया था। तिण्ण का अर्थ भारी होता है। उन्हें जन्म के समय उसे गोद में उठाते समय वह भारी लगा होगा अत: उन्होंने उसका नाम तिण्ण रख दिया।

तिण्ण सोलह वर्ष की आयु में ही एक कुशल शिकारी बन गया। उसके पिता ने परंपरा के अनुसार, उसको कबीले का सरदार बना दिया। कबीले की प्रथा के अनुसार, तिण्ण अपने पहले आखेट पर निकला। उसके साथ उसके दो नौकर नाण और काद भी थे। शिकार करते-करते जब तिण्ण थोड़ा थकने लगा तो उसने साथ चल रहे नौकरों से पूछा कि मीठा पानी कहाँ मिलेगा? नौकरों ने कहा कि ये निकट की पहाड़ी पर एक नदी का उद्गम है, वहाँ पानी भी मिल जाएगा तथा साथ ही वहाँ भगवान शिव का एक मंदिर है, उनके दर्शन भी हो जाएंगे।

मंदिर पहुँचते ही, शिवलिंग को देखकर तिण्ण के हृदय में भक्ति का तेज आवेश आया और उसने दौड़कर शिवलिंग को आलिंगन में बाँध लिया और उनसे बोलने लगा- प्यारे भगवान! आप यहाँ जंगली पशुओं के बीच में अकेले रहते हैं। आप की देखभाल कौन करता होगा? यह कहते-कहते उसने देखा कि शिवलिंग के ऊपर कुछ पुष्प, बिल्वपत्र व जल इत्यादि हैं। उसने इस सबका कारण अपने नौकरों से पूछा तो नाण बोला- आपके पिता जी के साथ हम एक बार यहाँ आए थे। तब एक ब्राह्मण को हमने इस शिवलिंग पर पुष्प चढ़ाते, जल डालते व पत्तियाँ रखते देखा था। साथ ही उसने कुछ खाने को भी सामने रखा था।

यह सुनते ही तिण्ण के मन में भाव हुआ कि वह भी भगवान के लिए ऐसा ही करे। उसने तुरंत मारे गए पशु का माँस भगवान को चढ़ाया, बाहर से वह पुष्प तोड़ कर लाया, अभिषेक के लिए कोई बरतन न मिला तो उसने अपने मुँह में ही पानी भर लिया और जाकर उसने भगवान पर उसका कुल्ला कर दिया। पुष्प व पत्तियाँ भी वहीं बिखेर दीं, रात भर वह उसी मंदिर के बाहर पहरा देता रहा कि कहीं भगवान को कोई कष्ट न दे दे। अगली सुबह उस मंदिर की पूजा करने वाला ब्राह्मण जब आया तो मंदिर में माँस बिखरा देखकर और वहाँ की स्थिति देख कर वह दुखी हो गया कि लगता है किसी ने मंदिर भ्रष्ट कर दिया है। उसे दुखी देखकर परमेश्वर वहाँ प्रकट हुए और बोले-दुखी मत हो वत्स! मेरा यह शिकारी भक्त पूर्णरूपेण मेरे ही प्रेम में निमग्न है, वह जो करता है और जैसा करता है वही मेरे लिए सर्वोत्तम है। उसके जूते की नोक मुझे स्कन्द के आलिंगन के समान लगती है, उसके कुल्ले का पानी गंगाजल के समान पवित्र है, उसके चढ़ाए पुष्प मेरे लिए देववाटिका से ज्यादा बढ़कर हैं। तुम चाहो तो उसकी भक्ति कल छुपकर देखना।

अगले दिन तिण्ण के पूजा करते आते समय भगवान शिव ने एक लीला रची। उनकी प्रतिमा में से आँख के स्थान पर रक्त आने लगा। तिण्ण ये देखकर भावाकुल हो गया। उसे समझ नहीं आया कि क्या करे? इतने में उसे कबीले की एक कहावत याद आयी कि माँस, माँस से ही ठीक होता है। यह याद आते ही उसने बाण की नोक से अपनी एक आँख निकाल कर भगवान की प्रतिमा में लगा दी। वहाँ से निकलता खून बंद हो गया परंतु दुसरी आँख से खून निकलने लगा। यह देखकर वह दूसरी आँख को भी बाण से छेद कर निकालने वाला था कि भगवान शिव ने प्रकट होकर उसके हाथ से बाण ले लिया और बोले- मेरे कण्णध (कण-आँख, अण- पुत्र) मेरी आँखें तो तू ही है। तू ही मुझे सभी भांति जानता है। तू ही मेरा सच्चा भक्त है। भगवान को इसी तरह सच्ची भांति से जानने वाला ही उनके पुरुषोत्तम रूप को जान पाता है। ❑

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ - गीता 11/33

अर्थात्- हे अर्जुन! यश को प्राप्त करो। शत्रुओं को जीत कर राज्य का सुख भोगो। ये सारे शत्रु मेरे द्वारा पहले ही मार दिए गए हैं। तुम मात्र इन्हें मारने के लिए निमित्त मात्र बन जाओ।

कृषि के ऋषि तंत्र का विकास

ग्रामप्रधान भारत देश में कृषि सदैव से ही एक महत्त्वपूर्ण नियम रही है। कभी सामान्य खेती के साथ जीवन निर्वाह की बात सोची जाती थी, लेकिन विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी में प्रगति के साथ कृषि की वैज्ञानिक, तकनीकी एवं उन्नत खेती की बात की जाने लगी। उत्पादन कई गुना बढ़ने लगा और कृषि का एक व्यवसाय के तौर पर चलन प्रारम्भ हुआ।

अधिक लाभ के लिए अधिक उत्पादन की बात सोची जाने लगी। इसी के अनुरूप रासायनिक उर्वरकों का चलन प्रारम्भ हुआ, जो फसल की आवश्यकताओं के अनुरूप मिट्टी में पोषक तत्वों की वृद्धि के साथ उत्पादन में वृद्धि कर सके। साथ ही फसलों की नई संवर्धित प्रजातियाँ विकसित की गईं। इन सबके बीच भारत में हरित क्रांति का दौर भी प्रारंभ हुआ। कृषि उत्पादन की दृष्टि से देश के कई प्रांत इसके साक्षी बने। इसी के साथ कई तरह के हानिकारक कीटों व जीवाणुओं का भी खेती में प्रवेश होता गया, जिनके ऊपर नियंत्रण करने के लिए कीटनाशकों का उपयोग शुरु हुआ।

क्रमश: मिट्टी के साथ रासायनिक खेती एवं कीटनाशकों के अतिशय प्रयोग के साथ हुई ज्यादतियों के दुष्परिणाम आने शुरु हो गए। भूमि अपनी उर्वरा शक्ति खोने लगी, मिट्टी विषैली होने लगी और हानिकारक तत्व सब्जी, अन्न, दूध व फलों में प्रवेश कर हमारी आहार श्रृंखला में शामिल हो गए। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि आज हम जो भोजन ले रहे हैं, उसमें प्राय: एक अंश विषैले तत्वों का भी रहता है, जो हमारे शरीर में संग्रहित होते रहते हैं। कालान्तर में ये स्वास्थ्य के लिए घातक साबित होते हैं व कई तरह की विसंगतियों के साथ कैंसर जैसे खतरनाक रोग के रूप में प्रकट होते हैं।

देश के कई क्षेत्रों में कई प्रकार के कैंसर रोग इसी पृष्ठभूमि में पनप रहे हैं। पंजाब में तो कैंसर पीड़ितों के उपचार के लिए कैंसर ट्रेन का तक चलन आरम्भ हो गया है। ऐसे ही देश के कई कोनों में फल व सब्जी उत्पादन में अतिशय रसायन व कीटनाशकों के प्रयोग के साथ पनप रही घातक बीमारियों व कैंसर रोगियों की चौंकाने वाली खबर सामने आ रही हैं, जो चिंता का विषय हैं।

इस परिदृश्य में कृषि को लेकर नये सिरे से सोचने, विचारने व अमल करने का समय आ चुका है। कृषि को रसायन एवं कीटनाशक मुक्त करने के लिए यथासम्भव प्रयास करने की आवश्यकता है। माना जहाँ रासायनिक खेती चलन में है वहाँ इसका तत्काल जैविक कायाकल्प नहीं हो सकता लेकिन चरणबद्ध ढंग से इसे अमली जामा पहनाया जा सकता है। प्राकृतिक खेती के ऐसे कई सफल प्रयोग साबित करते हैं कि यदि चाहत हो तो जैविक कृषि को सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है।

आवश्यकता रासायनिक खेती के नुकसानों को हृदयंगम करने की है कि किस तरह से यह भूमि को विषाक्त कर रही है, किस तरह से यह स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ है। ऑर्गेनिक फार्मिंग जहाँ स्वास्थ्य लाभ को सुनिश्चित करती है, तो वहीं इसमें प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हुए कार्य का संतोष भी इसमें जुड़ा हुआ है। इस रूप में खेती एक शुद्ध कर्म बन जाती है, जिसमें आत्मसंतोष के साथ दैवी अनुग्रह भी जुड़ जाते हैं। ऐसे में भूमि एवं प्रकृति के साथ श्रद्धा एवं संवेदना का रिश्ता कृषि के ऋषितन्त्र को विकसित करता है, जिसमें श्रम व अर्थ के साथ धर्म का संयोजन होता है और खेती सबके लिए कल्याणकारी पेशा बन जाती है। आवश्यकता इस दिशा में साहसिक एवं दूरदर्शी पहल की है।

विदित हो कि आज लोग विषाक्त रासायनिक उत्पादों से तंग आ चुके हैं। ऐसे में उपभोक्ता स्वस्थ व ऑर्गेनिक उत्पादों के लिए पूरी कीमत चुकाने को तैयार हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि जितना खर्च विषैले उत्पादों को खाकर बीमार होने पर दवाईयों में लगता है, उससे बेहतर है कि उचित दाम देकर स्वस्थ आहार लिया जाए, जिससे रोगों की नौबत ही नहीं आए। अत: बाजार में ऑर्गेनिक उत्पादों की भारी माँग है तथा ऑर्गेनिक पद्धति से कृषि करने वाले ऐसे किसानों को अपने श्रम के उचित दाम भी मिल रहे हैं।

आश्चर्य नहीं कि कई दूरदर्शी एवं भावनाशील किसान ऑर्गेनिक खेती को आधार बनाकर अपने-अपने

ढंग से कार्य करने में जुटे हैं। इसमें रासायनिक खादों की जगह जैविक खादों का उपयोग किया जा रहा है, जिन्हें उपयुक्त विधि द्वारा घर पर ही तैयार किया जाता है। फल-सब्जियों व अन्न को नष्ट करने वाले कीटों व जीवाणुओं के लिए कई तरह के प्राकृतिक कीटनाशक तैयार किए जा रहे हैं, जिनके लिए अपने इलाके में हो रहे प्रगतिशील किसानों की मदद ली जा सकती है। इस समय सुखद बात यह है कि सरकारी तंत्र भी ऑर्गेनिक खेती को बढ़ावा दे रहा है, जिसकी योजनाओं का लाभ उठाया जा सकता है।

खेती को उन्नत करने में यज्ञ का उपयोग किया जा सकता है, जो भारत की प्रचलित पद्धति रही है। यज्ञ से भूमि की ऊर्वरता से लेकर फसल को पोषणयुक्त व विषाणुमुक्त किया जा सकता है। इस संदर्भ में शांतिकुंज, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के ग्राम प्रबंधन विभाग से मदद ली जा सकती है, जहाँ ऑर्गेनिक फार्मिंग को लेकर अभिनव प्रयोगों को करने से लेकर शिक्षण एवं प्रशिक्षण का एक सुदृढ़ एवं विकसित तंत्र बनाया गया है।

समय की माँग कृषि को ऋषितंत्र से जोड़कर समग्र रूप में विकसित करने की है। जमीन मात्र मिट्टी का टुकड़ा भर नहीं है, जिसका अपने व्यावसायिक हित व स्वार्थ के लिए दोहन व शोषण किया जाए। यह प्रकृति का एक जीवंत घटक है, जिसके साथ संवेदनशील व्यवहार करते हुए, कृषि को भौतिक एवं आध्यात्मिक अनुदानों के साथ एक उत्पादक पैशे के रूप में विकसित किया जाने की आवश्यकता है। कृषि को अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से जोड़ते हुए अपनाया जाना समय की माँग है, युगधर्म है।

❑

देशप्रेम में दीवाने होकर अमर शहीद करतारसिंह ने जब स्वतंत्रता के लिए विप्लवी युवकों के संगठन में सम्मिलित होने का निश्चय किया तो परिवार के लोग बड़े चिंतित हुए। कुछ ही दिनों बाद वे एक कांड में पकड़ लिए गए और उन्हें फाँसी की सजा दी गई तो उनके बाबा आकर उनसे लिपट गए और भावविह्वल होकर रोने लगे। बिलखते हुए बाबा ने फाँसी के लिए तैयार करतारसिंह से कहा-'करतार! मेरे बेटे! इस तरह से अपने प्राणों को मत दे।' तो करतार ने अपने बाबा को सांत्वना देते हुए कहा-'दादा! मिलखा आजकल कहाँ है?' 'वह तो हैजे की बीमारी से मर गया बेटा!' बाबा ने करुणार्द्र रुँधे कंठ से कहा। 'और तुहारा वह सरदार?', 'उसे भी तो मरे हुए बरसों गुजर गए हैं रे!' 'तो क्या दादा आप मेरे लिए भी यही सोचते हैं कि आपका लाड़ला करतार भी उसी बिस्तर पर पड़ा रह कर कराहता हुआ मरे? क्या यह मौत उन मौतों से अच्छी नहीं है?' दादा चुप रह गए और मृत्यु को अंतिम सत्य बताते हुए उसे शानदार ढंग से अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए वरण करना श्रेष्ठ सिद्ध कर करतार सिंह फांसी के फंदे पर झूल गए। शहीदों के लिए राष्ट्र सर्वोपरि होता है एवं ये संस्कार ऐसे जमाए होते हैं कि किसी भी प्रलोभन से नहीं मिटते।

आवश्यकता है युवाओं के संवेदनशील मार्गदर्शन की

आज युवा प्रतिभा को संभालने की जरूरत है क्योंकि कई प्रकार के गलत प्रभाव बच्चों को गुमराह और पथभ्रष्ट कर रहे हैं। हमारी युवा पीढ़ी को जो चुनौतियाँ मिल रही हैं उनसे वे भी विचलित हैं और उनके अभिभावक, अध्यापक आदि सभी घबराए हुए हैं। बच्चे तनाव और दबाव में हैं जिस कारण उनकी प्रतिक्रिया कई बार अत्यंत दुखद रूप ले लेती है।

जालंधर के एक स्कूल की छात्रा ने विगत दिनों इस कारण आत्महत्या कर ली क्योंकि गणित शिक्षक ने उसे डाँटा था। अपने आत्महत्या के पर्चे में वह अपनी मौत के लिए शिक्षक को जिम्मेवार ठहरा गई और पिता के बारे में भी लिख गई कि 'आप अब शिकायत नहीं करोगे कि मैं स्कूटर माँगती रहती हूँ।' बस इतनी सी बात और उसने अंतिम कदम उठा लिया। अध्यापक को जेल हो गई जिस पर बाकी अध्यापक पूछ रहे हैं कि हमें बताऐं कि हम सख्ती करें या न करें?

ऐसी असंख्य मिसालें मिल रही हैं। सबसे भयावह खबर हैदराबाद की है जहाँ तेलंगाना बोर्ड ऑफ इंटरमीडिएट एजुकेशन के गलत परिणाम के कारण २५ विद्यार्थियों ने आत्महत्या कर ली। ये सभी होनहार छात्र थे लेकिन परिणाम के मूल्यांकन के समय गफलत के कारण इन्हें फेल कर दिया गया। बाद में परिणाम सही किए गए पर बच्चे तो जान दे चुके थे। समाज की यह कितनी बड़ी असफलता है कि बच्चों ने पुनर्मूल्यांकन का भी इंतजार नहीं किया और फंदा लगा लिया।

भारत में हर घंटे एक छात्र आत्महत्या कर रहा है। कोटा जहाँ कोचिंग क्लास की भीड़ है वहाँ से अक्सर आत्महत्या की खबरें मिलती हैं। इसका बड़ा कारण पारिवारिक दबाव है। बड़े-बड़े पैकेज की खबरें सुनकर माँ-बाप अपने बच्चों को उस ओर धकेलते हैं पर कई रास्ते में ही टूट जाते हैं। मनोविशेषज्ञ बताते हैं कि वर्तमान समय में बच्चों में पनप रहे चिंता, विषाद तथा अविश्वास को संभालने की जरूरत है। कई बार असफलता या माता-पिता की आकांक्षाओं पर खरे न उतरने से बच्चे ऐसी जगह पहुँच जाते हैं जहाँ से वे वापिस नहीं लौट सकते हैं।

युवाओं की हताशा तथा अवसाद कई बार ऐसा उग्र रूप धारण कर जाते हैं जिसका भयावह रूप हम आज देख रहे हैं। युवाओं का एक वर्ग हिंसक हो रहा है। हरियाणा में फतेहाबाद में दीवाली के दिन पटाखे फोड़ने से रोकने पर एक १५ वर्ष के लड़के ने अपने चाचा को गोली मार दी। गुड़गाँव के निजी स्कूलों में हुई दो घटनाओं के बाद अध्यापक समुदाय ने पुलिस में अपनी सुरक्षा की गुहार लगाई। एक मामले में एक छात्र ने अपनी अध्यापिका और उसकी बेटी से बलात्कार की धमकी दी और एक और छात्र ने अपनी अध्यापिका को कैंडल लाइट डिनर के लिए आमंत्रित किया।

मुक्तसर में डाँटने पर एक आठवीं के छात्र ने अपने अध्यापक के सिर पर ईंट से हमला कर दिया। लड़कियों को अपशब्द कहने से रोकने पर सोनीपत में एक छात्र ने शिक्षक पर गोलियाँ चला कर उसकी हत्या कर दी थी। उससे दो महीने पहले एक १८ वर्ष के छात्र ने अपने स्कूल प्रिंसीपल की अपने पिता के लाइसेंसी रिवाल्वर से हत्या कर दी। बड़ौदा में एक दसवीं कक्षा के छात्र ने अपने से जूनियर की इसलिए हत्या कर दी क्योंकि वह स्कूल में पड़ी डाँट का बदला लेना चाहता था और स्कूल बंद करवाना चाहता था। इस लड़के की मारे गए लड़के के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी, वह तो उसे जानता भी नहीं था। इससे पहले गुड़गाँव के एक स्कूल में एक छात्र अपने से जूनियर की इसलिए हत्या कर चुका है क्योंकि वह आने वाली परीक्षा तथा पैरेंट-टीचर मीटिंग रद्द करवाना चाहता था।

बस इतनी सी बात के लिए एक जान ले ली गई। हमारे समाज में कैसे दानव पैदा हो रहे हैं? एक अनाम माँ ने एक अखबार में लेख लिखा है कि उनका १५ वर्ष का लड़का जब उसकी नाजायज माँग पूरी नहीं होती तो उन्हें तथा अपने पिता को पीटता है। इस माँ को यह डर है कि एक दिन यह सुर्खियाँ न बन जाऐं कि 'माँ को बेटे ने मार डाला।' कितनी दहशत है। उत्तराखंड के एक गाँव में अश्लील विडियो देखने के बाद पाँच अवयस्क

लड़कों ने एक ८ साल की मासूम से बलात्कार किया। बलात्कार के मामलों में भी अवयस्कों में नाम अधिक संख्या में बाहर आ रहे हैं। निर्भया के साथ गैंगरेप में भी एक अवयस्क अपराधी था।

यह बच्चे इस तरह क्यों गलत रास्ते पर चल रहे हैं? इसके कई कारण हैं। अधिकतर मामले घर के बिगड़े हुए माहौल की तरफ संकेत करते हैं। संयुक्त परिवार टूट चुके हैं। कई बार माँ-पिता का अपना व्यवहार सही नहीं होता इसलिए बच्चे भी वही सोच ग्रहण करते हैं। कई बार अभिभावक जरूरत से अधिक नरम और उदार बन जाते हैं। बच्चों को खुश रखने के लिए वह समझौते करते चले जाते हैं जो आगे चलकर महँगे साबित होते हैं। कई परिवारों में बच्चों से संवाद टूट रहा है।

दिल्ली के एम्स के डॉक्टर राजेश सागर सही शिकायत करते हैं कि 'पहले परिवारों में पूरा अनुशासन रहता था लेकिन अब माता-पिता उनकी माँगों को पूरा कर देते हैं क्योंकि उनके पास खुद बच्चों के लिए समय नहीं है।' बच्चों को खुश रखना अब मजबूरी है। कई अभिभावक यह कहने में गर्व महसूस करते हैं कि वे अपने बच्चे के मित्र हैं। यह बड़ी भूल है। उन्हें बच्चों के आगे वह मिसाल कायम करनी चाहिए जो उन्हें सही रास्ते पर रखे। आज के बच्चों के सामने एक बड़ा खतरा है- सोशल मीडिया। इतने यौन-अपराध भी इसलिए हो रहे हैं क्योंकि इंटरनेट और मोबाइल के माध्यम से बच्चों को वह जानकारी खुले तौर पर मिल रही है जो पहले वर्जित समझी जाती थी क्योंकि अभिभावक के पास समय कम है और युवाओं के पास आई पैड या मोबाइल उपलब्ध हैं इसलिए वे सोशल मीडिया पर अधिक से अधिक समय व्यतीत कर रहे हैं। आज सब फोन पर उपलब्ध है, इस पर नियंत्रण करने की तत्काल जरूरत है। अब तो वेब सीरीज शुरू हो गई है जिन पर किसी का नियंत्रण नहीं, कोई सैंसर नहीं।

समय आ गया है कि एक समाज के तौर पर हम अपने बच्चों की सुरक्षा के मामले को प्राथमिकता से लें। दिल्ली में ८ साल के बच्चे ने डाँट के बाद अपना गुस्सा एक साल के बच्चे को पत्थर से मार कर उतारा। परिवार- परिवार के तौर पर इकठ्ठे नहीं बैठते। एक छात्रा ने बताया कि जब वह घर पहुँचती है तो माँ रिमोट से चिपकी रहती हैं। बच्चों को वह प्यार, देखभाल तथा मार्गदर्शन आज नहीं मिल पाता जो पहले मिलता था। संस्कारों के पतन की बड़ी कीमत सब चुका रहे हैं और इसीलिए सब गलत दिशा की तरफ बढ़ते नजर आते हैं।

एक कवि ने लिखा है कि 'हमने भी छीना है उनका बचपन। उनके हाथों में टीवी-मोबाइल थमाया किसने? बच्चों के ऊपर मत डालिए कुछ। ये कसूर कर कौन रहा है? ये मैं कर रहा हूँ।' कवि की बात सही है। हमने ही उनसे बचपन छीन लिया और उन्हें समय से पहले वयस्क बना दिया। कई बार इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। आज परिवार एवं समाज में संवेदना, संस्कार एवं शिक्षा की आवश्यकता है। उसके माध्यम से अभिभावक अपने बच्चों को प्यार से उचित दिशा दे सकते हैं एवं उनका मार्गदर्शन भी कर सकते हैं। यह प्रक्रिया जितना शीघ्र संभव हो, कर लेनी चाहिए ताकि इस विषम एवं भयावह संकट से उबरा जा सके। ❑

मिट्टी ने कुहार से कहा- 'मुझे ऐसा सौभाग्यशाली दीपक बना दीजिए जो भगवान के मंदिर को भी प्रकाश से भर सके।' कुहार ने कहा- 'यह कुछ भी कठिन नहीं। तुम कुचले जाने, चाक पर घूमने और आँव में पकने भर को तैयार हो जाओ। मेरे हाथ तुहारी इज्छापूर्ति में पूरी-पूरी सहायता करेंगे।'

वास्तव में हर व्यक्ति के लिए ऐसे अवसर आते हैं कि कौन कितना, किस स्थिति में स्वयं को लचीला बनाता और परिस्थितियों के अनुरूप बदलता है, इसी पर उसके जीवन की सार्थकता निर्भर है।

आध्यात्मिकता के मूल सिद्धान्त

[गतांक से आगे]

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस महत्त्वपूर्ण उद्बोधन में अध्यात्म पथ के सभी पथिकों आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांतों को याद करने कहते हैं। परमपूज्य गुरुदेव कहते हैं कि दृष्टिकोण का परिवर्तन, विवेकशीलता का जागरण एवं सेवाभाव का विकास- ये सभी आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांतों में हैं। यदि व्यक्ति बहुत उपासना करे पर कर्त्तव्यपालन करने से एवं सेवा भाव का विकास करने से वंचित रह जाए तो उसके अंदर अध्यात्म के मूल गुणों का विकास नहीं हो पाता है। परमपूज्य गुरुदेव जापान के गाँधी कागावा से लेकर स्वयं अपना उदाहरण प्रदान करते हुए कहते हैं कि जिन्होंने भी आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांतों को आत्मसात किया- उन सबके जीवन में वे सभी चमत्कार स्वतः आते चले गए, जिनके विषय में हम शास्त्रों में पढ़ते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

गुरुदेव-माताजी का त्याग

मित्रो! मुझे अपने दरवाजे पर आने वाले व्यक्ति और उनके एहसान याद रहते हैं। मुझे अपना फर्ज याद रहता है। एक बार एक बहेलिया आया और एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उस पेड़ पर एक कबूतर और कबूतरी बैठे हुए थे। उन्होंने कहा कि हमारे दरवाजे पर एक बहेलिया आया है। इसके कुछ खाने-पीने का इन्तजाम तो करना ही चाहिए। कबूतर ने कहा कि हम तो जानवर हैं। इसके लिए हम क्या इन्तजाम कर सकते हैं।

कबूतरी ने कहा कि अपने दरवाजे पर आया है इसलिए इसे खाली हाथ नहीं जाने देंगे। कबूतर गया और बहुत से तिनके और घास इकट्ठी कर लाया। कबूतरी गयी और कहीं से जलती हुई लकड़ी उठा कर ले आयी और घास-तिनकों में उस जलती हुई लकड़ी को रख दिया। आग जलने लगी। जलती आग में पहले कबूतर कूदा और उसके बाद कबूतरी। दोनों आग में जल गये। बहेलिया जो भूखा बैठा था, उसने देखा कि भगवान की बहुत दया है, जो दो कबूतर खाने को मिल गये।

मित्रो! कबूतर और कबूतरी की यह तो कहानी है पर हम और हमारी धर्मपत्नी सारी जिंदगी कबूतर और कबूतरी के तरीके से यही काम करते रहे हैं। हमने अपने दरवाजे पर आने वाले की इज्जत का, उसकी भावनाओं का बहुत ख्याल रखा है। अभी भी ख्याल है और आगे भी ख्याल रखेंगे। जब तक हमें जिन्दा रहना है, अपनी आदत, अपने स्वभाव और कर्त्तव्य से बाज आने वाले नहीं हैं। हम जरूर सहायता करेंगे। मान लीजिए आपकी जरूरत को पूरा कर दें, तो क्या आपका यहाँ आने का उद्देश्य पूरा हो सकता है। कुछ भी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

मनोकामनाओं की पूर्ति असंभव है

कैसे? एक थे महात्मा और उनके यहाँ एक चूहा रहता था। चूहे ने कहा-महाराज जी! हमको बिल्ली तंग करती है। हमें बिल्ली बना दो। बिल्ली बना दिया। फिर कुत्ता आया और बिल्ली को तंग करने लगा। बिल्ली ने कहा- महाराज जी! यह कुत्ता हमको तंग करता है हमें कुत्ता बना दो। कुत्ता बना दिया। कुत्तों को खाने वाले लकड़बग्घे आते हैं। लकड़बग्घे आकर कुत्तों को खाने लगे, तो कुत्ते को लकड़बग्घा बना दिया। लकड़बग्घे को शेर खाते हैं। उसने कहा-शेर बहुत तंग करता है। हमें शेर बना दीजिए। महाराज जी ने जल लिया, मंत्र फूँका और लकड़बग्घे को शेर बना दिया। शेर जंगल में बैठा था और शिकारी बंदूक लेकर के आया। शेर को मारकर जीप में डालकर ले जाने लगे। उस शेर ने देखा कि शिकारी आता है और शेर को मार कर ले जाता है।

शेर ने कहा-महाराज जी! हमको तो कड़ा भय है, कष्ट है। क्यों? शिकारी सब शेरों को मार रहा है, हमको भी मार डालेगा। हमारी खाल निकाल लेगा। अब तो बड़ी मुश्किल आ गयी। क्या करना चाहिए? महाराज जी ने कहा बेटा तू चूहा हो जा। मंत्र फूँका और शेर चूहा बन गया। अब तू चूहा बनकर बैठा रह। न शिकारी आने वाला है, न लकड़बग्घा आने वाला है, न कुत्ता आने वाला है, न बिल्ली आने वाली है। रोटी खा लिया कर, घूम लिया कर, सुखी रहेगा। महाराज जी ने चूहे को फिर से चूहा बना दिया।

समस्याओं का स्थायी समाधान

मित्रो! जीवन में समस्यायें तो आयेंगी ही। अभी समस्या एक है, कल पाँच आयेंगी। कल पाँच समस्यायें आपकी हल होंगी, फिर ले आयेंगी पच्चीस। पच्चीस समस्यायें हल कर दूँगा, तो लेकर के आयेंगे ५०० समस्यायें। समस्यायें तो आती ही रहती हैं। समस्याओं को अगर हल करना है, तो आदमी को चाहिए कि अपने मन को, आत्मा को शुद्ध कर डाले और अपने विचारों को, दृष्टिकोण को सही कर लें। तभी सचमुच में समस्यायें हल हो पायेंगी। इसीलिए मित्रो! मैंने शुरू में भी यही शिक्षण दिया और आज भी यही शिक्षण दे रहा हूँ कि आप अपने दृष्टिकोण को ठीक करें।

आपको मैंने इसलिए बुलाया था कि आपके अन्त:चेतन के कपाट खोल दूँ और हमेशा अध्यात्मवेत्ता अपने शिष्यों को जो शिक्षण करते हैं, वह शिक्षण करूँ। इसीलिए आपको बुलाया कि आपको आपके बारे में जानकारी कराऊँ। आप गुमराह हो गये थे। आपको इसीलिए बुलाया कि आपको आपके रास्ते के बारे में, आपके लक्ष्य के बारे में फिर से जानकरी दे दूँ। मैंने आपको इसलिए बुलाया था कि आपके मन में यह वहम भर गया है कि हम भगवान के प्यार और भगवान के अनुग्रह और भगवान की शक्ति पाने के लिए छोटे-छोटे कर्मकाण्ड और छोटी सी उपासना जैसे क्रियाकृत्य करने के बाद में उस स्थान तक पहुँच सकते हैं, जहाँ पहुँचने वाले को भगवान का प्रकाश दिखाई पड़ता है और भगवान का स्नेह मिलने का हक मिल जाता है।

मित्रो! मैंने आपको मन में से ये चीजें निकालने के लिए बुलाया है और मैंने आपको इसलिए भी बुलाया कि भगवान ने आपको पुकारा है। आप में से हर आदमी बहुत अच्छा, बहुत सच्चा और श्रेष्ठ स्तर का आदमी है। आपके ऊपर मलिनतायें जम गयीं। आपके ऊपर मैल जम गया। आपके ऊपर कषाय और कल्मष जम गये, इसलिए आपको अपने स्वरूप का भान नहीं रहा। अगर आपको अपने स्वरूप का भान रहा होता तो आपमें से हर आदमी आचार्य श्रीराम शर्मा होता। आपमें से हर आदमी महात्मा गांधी होता, महात्मा बुद्ध होता, कबीर होता, दादू होता, नानक होता, जवाहर लाल होता, दयानन्द होता, शंकराचार्य होता और न जाने कौन-कौन होता? आपको खाना भी मिल जाता, कपड़ा भी मिल जाता, रोटियाँ भी जरूर मिल जातीं; लेकिन इतना पाने के बाद, इतना करने के बाद आप में समाज की सेवा करने के लिए, देश को ऊँचा उठाने के लिए, संस्कृति के लिए, जो रोल अदा किया होता तो मजा आ गया होता। काम करते हुए भी, रोटी कमाते हुए भी आप बहुत कुछ कर सकते थे। मैं क्या कर सकता हूँ? आप सब भूल गये। मैंने आपको झकझोरने के लिए बुलाया।

मित्रो! अब मैं जाने के समय में हूँ। सो मैंने अपना सारा का सारा मन, सारी की सारी भावनायें इकट्ठी कीं और आपके ऊपर इन पाँच दिनों में छाया रहा। मैंने जो कुछ कहा, उस व्याख्यान का असर आपके ऊपर होने वाला है क्या, यकीन नहीं आता। मैं आपके ऊपर छाया रहा हूँ। सारे दिन आपको घर कर रखा है। चारों दिन में आपके मन और बुद्धि पर छाया रहा हूँ। मैंने आपको बहुत कुछ कहा है। आपको हाथ जोड़कर भी कहा है। बहुत अनुनय किया है, प्रार्थना की है। इन दिनों आप काम करते रहे हैं, तब मैं आपके पीछे-पीछे लगा रहा हूँ। अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा, अपने कारण शरीर के द्वारा, अपनी अन्तर्चेतना के द्वारा आपके साथ-साथ लगा रहा हूँ। मैंने आपमें से हर आदमी से यह कहा है कि मित्रो! आप उन लोगों में से नहीं हैं, जिनको अपने बच्चे पैदा करने और जानवरों के तरीके से केवल पेट के लिए जिन्दा रहना होता है। आप केवल उन लोगों में से नहीं हैं। आपको कुछ ऊँचे स्तर के कामों के लिए जिन्दा रहना चाहिए। यह मैंने बार-बार कहा है।

समाज की पुकार सुनें

मित्रो! आप उस जमाने में पैदा हुए हैं, जिसमें आपकी सेवा-सहायता की बहुत सख्त जरूरत है। आदमी आज सब कुछ भूल गया है, मैं क्या कह सकता हूँ। इतिहास साक्षी है कि कभी भी ऐसा गन्दा जमाना नहीं आया; जब आदमी अपने आपको भूल गया हो, अपने लक्ष्य और उद्देश्यों से इतना पिछड़ गया हो। आदमी के पास धन-दौलत है-मुबारक। आदमी पढ़-लिख गया-मुबारक। अंग्रेजी बोलना आ गया-मुबारक। जैसा घटियापन आज दिखाई पड़ता है, उतना घटिया आदमी कभी नहीं हुआ। ऐसा घटिया आदमी मुसीबतें पैदा करेगा।

घटिया आदमी समाज में भ्रम पैदा करेगा। इसलिए गिरे हुए आदमी को भावनात्मक स्तर पर ऊँचा उठाने के लिए भगवान ने आपको पुकारा है। देश ने

आपके पुकारा है। धर्म ने आपको पुकारा है। इस पुकार को कान में अंगुली डालकर के क्या आप पेट के लिए जिन्दा रहेंगे? क्या आप रोटियों के लिए जिन्दा रहेंगे? क्या आपके विचारों का, सारी की सारी आकांक्षाओं का केन्द्र बच्चे पैदा करना ही बना रहेगा? क्या आपके सामने स्वार्थपूर्ति और धनार्जन-इन दो के अलावा कोई तीसरी चीज नहीं आयेगी? आनी चाहिए। मेरा पूरा-पूरा मन है कि आपके अन्दर वह बोध पैदा होना चाहिए जो आपका कल्याण करे और सारे समाज का कल्याण करे। आपकी ऐसी भावना बलवती हो, इसलिए आपको बुलाया।

मित्रो! आपसे प्रार्थना करने के बाद में विदा करता हूँ। दुबारा मेरा-आपको कब मिलना हो, मैं नहीं कह सकता। दबाव डालने वाली प्रार्थना अब शायद मैं कभी न कर सकूँ। आप ऐसा मत मानना कि इन्होंने जो आज्ञा-अनुरोध किया है, तो ये हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। हम इनका कहना नहीं मानेंगे, तो देखेंगे कि ये हमारा क्या कर लेंगे। मैं आपका बहुत कुछ कर लूँगा, मैं आपको छोड़ने वाला नहीं हूँ। आप छोड़कर देख लीजिए। कैसे छोड़ेंगे मुझे, पर मैं तो नहीं छोड़ूँगा।

साथियो! एक बार ऐसा हुआ कि वाराह भगवान जमीन पर आये। हिरण्याक्ष पृथ्वी को चुराकर समुद्र में ले गया, तब विष्णु भगवान वाराह भगवान के रूप में आये। उन्होंने हिरण्याक्ष से लड़ाई की और उसे मार डाला और पृथ्वी को छुड़ाया और दुनिया में शान्ति स्थापित की। अब क्या करना चाहिए, तो समुद्र में नहा-धोकर वाराह भगवान घूमने लगे। दुनिया का नजारा देखा तो उनके मन में आया कि शादी कर लेनी चाहिए। एक अच्छी मोटी सुअरिया से उन्होंने ब्याह कर लिया। बस उनके बच्चा पैदा हुआ, बच्चे के बच्चा पैदा हुआ। फिर बारह बच्चे हुए। अगली बार चौबीस बच्चे हो गये और फिर बच्चों के बच्चे होते गये। बस, वाराह भगवान आराम से वहीं रहने लगे। बहुत दिन हो गये। विष्णु लोक में खबर पड़ी कि भाई! सारी की सारी फाइलें इकट्ठी पड़ी हैं। उन पर साइन नहीं हो रहे हैं। सारी व्यवस्था गड़बड़ा रही है। सारा का सारा काम चौपट हो रहा है। उनके पास बुलावा गया कि अब विष्णु लोक चलिए, बच्चों, नाती, पोतों की बात हो गयी। आप अपनी पोस्ट पर पधारिये।

मित्रो! सभी देवता बुलाने आये। उन्होंने कहा कि हम नहीं जायेंगे। शंकर जी ने कहा कि ठहर जाओ, मैं जाता हूँ और उनकी अकल ठिकाने लगाता हूँ। बस, शंकर जी महाराज लम्बा वाला त्रिशूल ले करके गये और वाराह भगवान को कन्धे पर लटकाकर लाये और विष्णु लोक में पटक दिया। लो यह अपना वाराह भगवान। उन्होंने कहा कि गलती हो गयी सो हो गयी, पर अब अपना काम करेंगे। बस, आप लोग वाराह भगवान हैं। आप जमीन पर जिस काम के लिए आये, उसे आप भूल गये।

आपको ज्ञान की ज्योति जलानी थी, क्योंकि आज चारों ओर अंधेरा छाया हुआ है। मनुष्य के जीवन में अंधेरा छाया हुआ है। अपने बारे में अंधेरा, सामाजिक मान्यताओं के बारे में अँधेरा, जीवन के उद्देश्य के बारे में अँधेरा, पारिवारिक व्यवस्थाओं के बारे में अँधेरा-चारों ओर अँधेरा है। ऐसे में एक मशाल जलाने की जरूरत थी और दीपक जलाने की जरूरत थी। तब मैं आपके पास आया और आपको इसलिए बुलाया कि आप वाराह भगवान हैं। आपके ऊपर बहुत जिम्मेदारियाँ हैं। दीपक जलाने के लिए आपको शपथ लेनी चाहिए। मैं कब कहता हूँ कि आपको बच्चे पैदा नहीं करने चाहिए, लेकिन बच्चे पैदा करने के अलावा भी आपके मन में देश-राष्ट्र के प्रति टीस और दर्द रहे, तो आप मेरी तरह समाज के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। इसकी आज बहुत आवश्यकता है।

आध्यात्मिकता करेगी सभी समस्याओं का समाधान

मित्रो! आध्यात्मिकता पाप को दूर करेगी। आध्यात्मिकता अच्छे इन्सान बनायेगी। आध्यात्मिकता दुनिया में खुशहाली ले आयेगी। आध्यात्मिकता दुनिया में व्याप्त पाप और ताप के अंगारों पर शीतल वर्षा करेगी। पूरी दुनिया में आध्यात्मिकता के अलावा किसी और साधन से समस्यायें नहीं सुलझेंगी। इसलिए आध्यात्मिकता का लाना बहुत जरूरी है। आध्यात्मिकता का वर्चस्व आज किसी काम का नहीं रहा। आज का निकम्मावाला अध्यात्म, बेकार वाला अध्यात्म, बेवकूफों वाला अध्यात्म केवल कहने का अध्यात्म है। उससे किसी का फायदा नहीं है। आप अपने फर्ज और कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करें। स्वयं को ऊँचा उठायें और अपने जीवन में श्रेष्ठ कार्य करें, जिसके लिए हम दुनिया में आये हैं। हमारा मिशन भगवान का मिशन है, मानवता का मिशन है। व्यक्ति के श्रेष्ठ बनाने का मिशन है। अगले दिनों यह सारे विश्व में फैलने वाला

है। आप गीध, गिलहरी के तरीके से इसमें सहयोग करें और अपने जीवन को सार्थक बनायें।

मित्रो! विचारणा, भावना ऊँची हो तो छोटी सी क्रिया से, थोड़े से परिश्रम से भी भगवान को पाया जा सकता है। आपको परीक्षित की कहानी सुना रहा हूँ। राजा परीक्षित को ऋषि ने शाप दे दिया था कि आज से सातवें दिन तक्षक नाग के डसने से उसकी मृत्यु हो जायेगी। लोमश ऋषि की समाधि खुली और उन्हें पता चला कि बेटे शृंगी ऋषि ने शाप दे दिया है, तो उन्होंने कहा कि यह तो बहुत बुरा हो गया। राजा परीक्षित धर्मात्मा था और उसको ऐसा शाप दिया गया लेकिन जो हो गया सो हो गया। अब मेरे बच्चे की बात को तो टाला नहीं जा सकता, लेकिन कोई ऐसा उपाय किया जाय, जिससे कि इस विपत्ति में भी कोई अच्छाई पैदा की जा सके।

लोमश ऋषि ने अपने विद्यार्थी को भेजा और कहा कि यह समाचार राजा परीक्षित को बताना चाहिए और यह बताना चाहिए कि जिन्दगी के जो दिन बाकी रह गये हैं, उनका अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय। राजा परीक्षित के पास वह विद्यार्थी चला गया। उसने कहा कि शृंगी ऋषि ने आपको आज एक शाप दे दिया। क्या शाप दिया? ये शाप दिया कि आज से सातवें दिन आपको साँप काट लेगा और आपकी मौत हो जायेगी। राजा ने पूछा कि तब मुझे क्या करना चाहिए। ऋषि की क्या आज्ञा है? उन्होंने कहा कि जीवन का थोड़ा-सा समय बचा हुआ है। मनुष्य की सबसे बड़ी बुद्धिमानी यही है कि उस बचे हुए समय का ठीक से इस्तेमाल कर लें। जो समय व्यतीत हो गया, सो हो गया, लेकिन जो रह गया है, उसको अगर आदमी ठीक तरह से इस्तेमाल कर सकता हो, तो थोड़े दिन भी बहुत हैं हमारे जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए। लोमश ऋषि के संदेश के रूप में विद्यार्थी ने यह बात कही।

मनुष्य की समस्या है अज्ञान

मित्रो! राजा परीक्षित विचार करने लगे कि मनुष्य के जीवन का उपयोग करने का सबसे अच्छा तरीका क्या है? विचार करने पर एक ही बात समझ में आयी कि मनुष्य का मन, मनुष्य की अन्तरात्मा इतनी महान और इतनी विशाल है कि अगर सीप के तरीके से उसमें स्वाति नक्षत्र की बूँद का पानी का एक कण भी मिल जाय, तो यह जीवन धन्य बन सकता है। आदमी के सामने एक ही समस्या है-वह है अज्ञान।

आदमी इतना समझदार और इतना अज्ञानी? समझदार इतना कि सारे के सारे काम करता है, पैसा कमाता है, व्यापार करता है, धन्धा करता है और बड़ा आदमी बन जाता है और बेवकूफ, अज्ञानी इतना कि इसको इस बात का ज्ञान नहीं है कि उसका स्वरूप क्या है? उसको किस लिए पैदा किया गया है? और क्या करना चाहिए? अगर यह ज्ञान मनुष्य के भीतर से जाग्रत हो जाय, तो आदमी के काम करने के ढंग और विचार करने के ढंग बहुत ही श्रेष्ठ बन सकते हैं और मनुष्य थोड़े दिनों में ही अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अज्ञान का निवारण करना, एक ही समस्या मनुष्य के जीवन में है। अज्ञान जो मेरे मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार के ऊपर छाया हुआ है। कषाय और कल्मष, पाप और ताप के आवरण छाये हुए हैं। इन आवरणों को अगर मैं हटा दूँ, तो आत्मा का सूर्य इस तरीके से प्रकाशवान बन सकता है जैसे बादल की घटायें हट जाने पर अँधेरा दूर हो जाता है और सूर्य की पुण्य प्रकाशमयी आभा चारों और फैलने लगती है। इस तरीके से मुझे सिर्फ एक काम करना है कि अपने अज्ञान के, मलीनता के आवरण को दूर कर देना है।

मित्रो! भगवान और इन्सान के बीच में एक छोटी सी दीवार है। इस एक इंच चौड़ी दीवार को हटाया जा सकता हो, तो भगवान और इन्सान दोनों एक हो जाऐं। बिलकुल समीप हो जाऐं और दोनों एक दूसरे के प्यार का आदान-प्रदान निरन्तर करते रह सकते हैं। पर एक ही अज्ञान की दीवार है जिसने मनुष्य को यह विचार करने पर मजबूर कर दिया कि आदमी एक शरीर है। आदमी एक कीड़ा है, मकोड़ा है। आदमी एक जानवर है और जानवरों को जैसे जीना चाहिए, उस तरीके से हम जिन्दगी जियें। यही विचार हमारे मन से लेकर के रोम-रोम में आच्छादित है। हमारी सारी की सारी गतिविधियाँ कीड़े-मकोड़ों की तरीके से, जानवरों के तरीके से, कुत्ते-बिल्ली और बंदरों के तरीके से हैं। बस उनके सामने दो ही उद्देश्य हैं- एक पेट पालना और दूसरा बच्चे पैदा करना। वासना और तृष्णा-इन दो के गुलाम सारे के सारे प्राणी हैं और सारे के सारे जानवर हैं। इन्सान में फर्क यह है कि अगर उस दीवार को- जो मनुष्य और भगवान के बीच खड़ी कर दी गयी है, उसे गिराया जा सके, तब आनन्द और उल्लास की धारा जीवन में प्रवाहित हो सकती है।

मित्रो! राजा परीक्षित ने विचार किया कि मुझे और कुछ काम नहीं करना है। क्रियाओं के फल नगण्य हैं। सारे के सारे फल जो मनुष्य के जीवन में स्थापित होते हैं, वे उसकी विचारणा पर टिके हुए हैं। विचारणा यदि ऊँची हो, तो छोटी-मोटी क्रियाओं से भी भगवान को प्राप्त किया जा सकता है और जीवन के उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है। जब मनुष्य की क्रियायें पहाड़ के बराबर हों और मनुष्य की भावनायें नगण्य हों, तब वे क्रियायें काम में नहीं आ सकतीं। भावनायें पहाड़ के बराबर और क्रियाओं की कीमत राई के बराबर है। इसलिए उन्होंने कहा कि क्रियायें जीवन में करूँ, अमुक काम करूँ, तमुक काम करूँ, पर इससे कुछ बनने वाला नहीं है। अपनी भावनाओं का मुझे परिष्कार करना चाहिए। राजा परीक्षित के जी में यह बात आयी। उन्होंने तुरन्त ही इन्तजाम किया। कोई ऐसा व्यक्ति बुलाया जाना चाहिए जो मेरे अन्तरंग के कपाटों को खोल दे। उन्हें तलाश किया जो उनकी निगाह में आया और वे व्यक्ति थे शुकदेव जी। शुकदेव जी वे व्यक्ति थे जिन्होंने अध्यात्म के ज्ञान को, भगवान के ज्ञान को जीवन में कार्यान्वित किया था। जिस व्यक्ति ने भगवान के ज्ञान को कार्यान्वित किया हो, केवल वही आदमी है जो दूसरे के बुझे हुए दीपकों को जला सकता है।

अध्यात्म का अधिकारी कौन

मित्रो! जिस आदमी ने अध्यात्म के ज्ञान को स्वयं जीवन में कार्यान्वित नहीं किया और जिसके जीवन के अन्तरंग में वे विचारणायें सुनायी नहीं दीं और जो केवल बाहर-बाहर से अध्यात्म के और पूजा के, धर्म के आयामों को छूता फिरता है, वह आदमी किसी दूसरे को लाभ नहीं दे सकता। एक आदमी था। नाव में बैठ करके समुद्र का बहुत लम्बा-चौड़ा सफर करके आया। एक गोताखोर भी वहीं समुद्र के किनारे रहता था। गोताखोर समुद्र में जाता, डुबकी लगाता और कई मोती ले आता। कभी पाँच मोती, कभी पच्चीस मोती, कभी दस मोती ले आता और वह आदमी जो नाव में-जहाज में बैठ करके सफर कर रहा था उसने लम्बे-चौड़े समुद्र को पार कर लिया।

उसने डुबकी लगाने वाले गोताखोर से पूछा- भाई साहब! हमने सारा समुद्र घूम लिया और एक भी मोती हमारे हाथ नहीं लगा और तुम यहीं के यहीं रहते हो और रोज मोती बीन लाते हो। इसकी वजह क्या है? उसने कहा-भाई साहब! इसका एक ही उत्तर है कि आप समुद्र की ऊपरी सतह पर घूमते रहते हैं और समुद्र के भीतर प्रवेश नहीं करते। अगर आपने समुद्र के भीतर गर्भ में प्रवेश करने की हिम्मत की होती, साहस दिखाया होता, तो आपको भी मेरी तरह से मोती मिल जाते। जैसे कि मैं रोज ले आता हूँ। मैं समुद्र के अन्दर घुस जाता हूँ। मैं डुबकी लगाता हूँ और मैं जोखिम उठाता हूँ और मैं अपनी जान को हथेली पर रख करके जाता हूँ। इतना काम करने के बाद ही कोई आदमी मोती प्राप्त करने का अधिकारी हो सकता है।

मित्रो! अध्यात्मवादी को भी गहरे में प्रवेश करना पड़ता है। कहने, सुनने और करने तक ही ये बातें सीमित नहीं हैं। आपने रामायण सुन ली, ठीक किया, अच्छा काम किया। आपने रामायण को कहना सीख लिया। उससे भी अच्छा काम कर लिया। आपने गोवर्धन की परिक्रमा कर ली, यह उससे भी अच्छा काम कर लिया। यह तो बहुत ही अच्छे काम हैं और आपको करने चाहिए। लेकिन यह सब काम करने पर ही आप अध्यात्मवादी नहीं हो सकते और आध्यात्मिकता का लाभ नहीं उठा सकते। आध्यात्मिकता का लाभ उठाने के लिए जरूरी है-उन विचारों को, उन सिद्धान्तों को आत्मसात करना, जो हमको बताये जाते हैं। सिखाये जाते हैं। उन्हें हम अपने जीवन में कार्यान्वित करना शुरू करें। ऐसे ही आदमी अध्यात्म के अधिकारी कहे जाते हैं।

॥ क्रमश: अगले अंक में समापन॥

गीली मिट्टी से ही खिलौने, बर्तन आदि बनते हैं। पकी हुई मिट्टी से कुछ भी नहीं बनता। लिप्सा की आग में जिसकी भावनारूपी मिट्टी जल गई उसका न भक्त बनना सभव है और न ही धर्मात्मा।

-परमपूज्य गुरुदेव

श्रीरामचरितमानस की रामकथा में आदिशक्ति माता पार्वती की तप साधना

विश्वविद्यालय परिसर में इस बार चैत्र नवरात्रि की विशेष कक्षाऐं 'श्रीरामचरितमानस की रामकथा में आदिशक्ति माता पार्वती की तप साधना' विषय पर श्रद्धेय कुलाधिपति जी द्वारा ली गयीं जिनका प्रसारण अखिल विश्व गायत्री परिवार के यूट्यूब चैनल के माध्यम से नियमित रूप से किया गया।

श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने इन कक्षाओं का आरंभ प्रथम दिवस इस जिज्ञासा के साथ किया कि आखिर माता पार्वती को तप करने की आवश्यकता ही क्यों आन पड़ी? वे तो स्वयं शक्तिस्वरूपा हैं, उन्हें तप करना ही क्यों पड़ा? माता पार्वती पूर्वजन्म में प्रजापति दक्ष की कन्या थीं। प्रजापति दक्ष, परमपिता ब्रह्मा के पुत्र थे। पहले जब उनकी कोई संतान नहीं थी, तब अपने पिता ब्रह्माजी के कहने पर उन्होंने आदिशक्ति की उपासना की। आदिशक्ति उन पर प्रसन्न हुईं और उनकी इच्छानुसार उनके घर में पुत्री 'सती' के रूप में उन्होंने जन्म लिया। विवाहयोग्य होने पर दक्ष के न चाहने पर भी सती का विवाह भगवान शिव से हो गया। इसलिए दक्ष, शिव व सती से खुश नहीं रहते थे।

एक बार दक्ष भवन में विराट यज्ञ का आयोजन हुआ। उसमें सबको आमंत्रित किया गया, केवल शिव व सती को उसमें नहीं बुलाया गया। भगवान शिव के मना करने पर भी सती उस यज्ञ में गयीं और वहाँ जाकर देखा कि उस यज्ञ में शिव का कहीं कोई स्थान ही नहीं है, और सती के आने से पिता दक्ष प्रसन्न भी नहीं हुए बल्कि उन्होंने देवाधिदेव महादेव की घोर अवमानना, घनघोर निन्दा व उपहास किया।

माता सती से यह सब सहन नहीं हुआ कि हमारे पिता उनकी निन्दा करते हैं, जो जगत की आत्मा हैं, जो जगत्पिता हैं। चूँकि दक्ष से उपजा हमारा ये शरीर है, इसलिए अब मैं इस पिता से कोई संबंध ही नहीं रखना चाहती। अब मैं नहीं कहलाऊँगी कि मैं दक्षपुत्री हूँ और

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
भयउ सकल मख हाहाकारा॥

ऐसा कह करके माता सती ध्यान समाधि में गयीं और उनके शरीर में योगाग्नि प्रज्ज्वलित हुई और सती उसमें भस्म हो गयीं।

चूँकि जिस कार्य के लिए आदिशक्ति अवतरित हुईं, वो कार्य सती रूप में न हो सका, इसलिए सती का पुनर्जन्म हुआ पर्वतराज हिमालय के यहाँ– पार्वती के रूप में। शैल का अर्थ होता है– पर्वत। जब माता आदिशक्ति ने पर्वतराज हिमालय के यहाँ जन्म लिया, तो वे शैलपुत्री कहलायीं। यह माता आदिशक्ति का पहला रूप है।

दुर्गासप्तशती में माता भगवती के नौ रूपों की कथा है और ये नौ रूपों की कथा, यथार्थ में उनके तप की कथा है और उनके नौ रूपों का वर्णन देवीकवच में बताया गया है–

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पंचमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्।
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना॥

ये भगवती के नौ रूप हैं। पहला रूप–शैलपुत्री का है, द्वितीय रूप– ब्रह्मचारिणी का है। तृतीय रूप में वो चन्द्रघण्टा हैं और चतुर्थ रूप में वो कूष्माण्डा हैं। पंचम रूप उनका स्कन्दमाता का है और अपने षष्ठम् रूप में वो कात्यायनी कही जाती हैं। उनका सप्तम् रूप कालरात्रि का है और अष्टम् रूप में वो महागौरी हैं और नवम् रूप में वो सिद्धिदात्री हैं। ये भवानी के नौ रूप क्रमिक रूप से उनमें प्रकट हुए हैं।

इसी तरह गायत्री मंत्र में नौ शब्द होते हैं, २४ अक्षर होते हैं। ये नौ शब्द है– तत्, सवितुः, वरेण्यं, भर्गो, देवस्य, धीमहि, धियो, योनः, प्रचोदयात्।

जब आदिशक्ति माता का शैलपुत्री रूप प्रकट होता है, तब इसमें तप के पहले आयाम की व्याख्या होती है, तप का पहला आयाम है- संकल्प। बिना संकल्प के तप नहीं होता है और जिसका संकल्प दृढ़ नहीं हो, वो तप नहीं कर सकता।

जब पार्वती जी ने जन्म लिया, तो उनके घर में नारद जी आए और उन्होंने कन्या का भाग्य बताया कि वैसे तो सब ठीक है, लेकिन इसका जो पति होगा-

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

(रा.च.मा. बालकाण्ड, दोहा- ६७)

योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, दिगम्बर और अमंगल वेषवाला, ऐसा पति इसको मिलेगा।

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी।
दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥

नारद जी की वाणी सुनकर, उनको हृदय में सत्य जानकर पति-पत्नी (हिमवान और मैना) को दु:ख हुआ और पार्वती जी प्रसन्न हुईं।

पार्वती जी के माता-पिता ने जब नारद जी से इसका उपाय पूछा तो नारद जी ने कहा कि उपाय तो एक ही है-तपश्चर्या।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

असंभव को संभव करने की सामर्थ्य केवल भगवान भोले बाबा में है, वही इस कन्या के भाग्य को बदल सकते हैं,

जद्यपि बर अनेक जग माहीं।
एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥

वैसे तो अनेक योगी, जति, अकाम, दिगम्बर मिल जाएँगे, लेकिन इसके लिए जो श्रेष्ठतम वर होंगे, वे स्वयं महादेव होंगे। अगर ऐसी भवितव्यता घटित हो जाए, तो फिर सारे अवगुण गुण में बदल जाएँगे।

पार्वती जी को नारद जी की बातें ऐसी लगीं, जैसे गुरु ने प्रबोध दिया हो। जैसे गुरु ने स्वयं प्रकट हो करके उनको जीवन लक्ष्य समझाया हो, एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं, यह सुनकर पार्वती जी को नारद जी प्रथम गुरु के रूप में दिखे, जिन्होंने उनको तप की प्रेरणा दी।

माता पार्वती को सामान्य व्यक्ति की अर्धांगिनी नहीं बनना था, बल्कि आदिदेव महादेव की पत्नी बनना था। महादेव ने तो कभी जन्म ही नहीं लिया, वे तो स्वाभाविक रूप से दिव्य हैं, उनकी दिव्यता के अनुपात में माता पार्वती को अपनी मानवीय देह में दिव्यता प्रकट करनी थी। इसलिए माता पार्वती को भीषण तप करना पड़ा।

माता शैलपुत्री के रूप में उनके अन्तस में, उनके व्यक्तित्व में तप का संकल्प अंकुरित हुआ, दृढ़ हुआ और इस तप के संकल्प के साथ वो परम शिव की ओर प्रेरित हुईं और यही गायत्री मंत्र का पहला अक्षर है- तत्। तत् माने होता है- वह। तत् है संकेत, जो सत् का आधार है। तत् प्रभु का वो अस्तित्व है, जो दृश्य भी है और अदृश्य भी।

द्वितीय दिवस- इस दिन आदिशक्ति माता पार्वती 'ब्रह्मचारिणी' के रूप में प्रकट हुईं। ब्रह्मचारिणी- नवदुर्गा का दूसरा रूप है और माता पार्वती के तप का दूसरा आयाम है और इसका सम्बन्ध गायत्री मंत्र के दूसरे अक्षर- 'सवितु:' से है। सविता का यथार्थ अर्थ है- सृष्टि को जन्म देने वाला, प्रसव देने वाला।

तप का दूसरा आयाम है- ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य के चार आयाम हैं- रेतस्, ओजस्, तेजस् और वर्चस। इनके सर्वोत्तम चार उदाहरण हैं- भगवान परशुराम, महात्मा भीष्म, महावीर हनुमान और शुकदेव, जिनमें क्रमश: रेतस्, ओजस्, तेजस् और वर्चस प्रकट हुआ है।

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस में नारद जी पार्वती जी से तप की महिमा बताते हुए कहते हैं कि तप आधार सब सृष्टि भवानी। हे पार्वती! तप ही इस सृष्टि का आधार है। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥ ऐसा हृदय में स्वीकार कर तुम तप करो। फिर शिव की अर्द्धांगिनी बनने के लिए पार्वती ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है और वो तपश्चर्या में प्रवृत्त हुईं। तप के दौरान जब माता पार्वती में ब्रह्मचर्य प्रकट हो रहा था, वे ब्रह्मचारिणी थीं। वो तपस्या में प्रवृत्त और संलग्न हुई थीं, तब वो रूपान्तरण की प्रक्रिया की ओर आगे बढ़ रही थीं। ब्रह्मचारिणी की कथा उनकी तपश्चर्या की कथा है। ब्रह्मचर्य धीरे-धीरे विकसित होता है, जिसका तात्पर्य है- ब्रह्म में प्रतिष्ठा।

तृतीय दिवस- तपश्चर्या के क्रम में माता का तीसरा स्वरूप है- चन्द्रघण्टा। माता के चन्द्रघण्टा स्वरूप में दो बातें हैं- चन्द्रमा और घण्टा। कहते हैं कि

माता चन्द्रघण्टा के शीर्ष पर अर्द्धचन्द्र विराजमान है। ये अर्द्धचन्द्र क्यों है? पूर्ण चन्द्र क्यों नहीं है? अर्द्धचन्द्र इसलिए है क्योंकि जब प्राण परिशोधित होगा, तो प्रकाश आएगा, लेकिन वो आधा ही होगा। पूर्णप्रकाश तो तब होगा, जब माता सिद्धिदात्री का रूप धारण करेंगी, तब प्राण के साथ मन भी प्रकाशित होगा। अब घण्टा उनके नाम के साथ क्यों है? स्वर क्यों? इसका निनाद क्यों? क्योंकि प्राण सबको आकर्षित करता है, इससे देव भी आकर्षित होते हैं और असुर भी। असुर भी हमारे प्राण को चूस लेना चाहते हैं और देवता भी हमारे प्राणों को माध्यम बनाना चाहते हैं। घण्टा निनाद इसलिए है ताकि प्राण को शुद्ध करने की साधना करने से आसुरी प्रवृत्तियाँ हमसे दूर हो जाएँ।

शास्त्र कथाओं में उल्लेख है कि असुर ऋषियों की तपश्चर्या चुरा लेते थे। कैसे? उनकी प्राण ऊर्जा को भटका करके, उनकी ऊर्जा को नियोजित कर लेते थे। असुर भटकाते हैं हमारा प्राण। लेकिन जब प्राण शुद्ध होने लगे तो? ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से वासनाओं की शुद्धि होने लगे तो? इस घण्टा निनाद से आसुरी शक्तियाँ, आसुरी प्रवृत्तियाँ, आसुरी दोष- सब पलायन कर जाते हैं। जब माता चन्द्रघण्टा का घण्टा बजता है, तो असुरता अपने आप पलायन कर जाती है और चन्द्रमा की तरह प्राण परिशुद्ध रूप से प्रकाशित होता है। गायत्री मंत्र का तीसरा शब्द 'वरेण्यं' और तप-साधना का तीसरा आयाम यानि प्रकाशित प्राण 'माता चन्द्रघण्टा' के माध्यम से मुखरित होता है।

चतुर्थ दिवस-आदिशक्ति माता पार्वती की तपस्या में एक नए आयाम यानि उनके चतुर्थ रूप 'कूष्माण्डा' का उदय। माता कूष्माण्डा की विभूति के दर्शन यानि पिण्ड में ब्रह्माण्ड का अनुभव। जो पिण्ड में ब्रह्माण्ड को जन्म देने वाली है, वो माता कूष्माण्डा हैं। ये जो कुम्हड़ा है, उनके अनुसार यही विचित्र सा ब्रह्माण्ड है। महादेवी कुम्हड़े की आकार वाली नहीं हैं, उनका तो दिव्य रूप है, लेकिन इस अखिल ब्रह्माण्ड को जन्म देने वाली होने के कारण उन महादेवी को कूष्माण्डा कहते हैं।

साधक जब उनकी विभूति को, उनकी कृपा को अनुभव करते है, तो उसे पिण्ड में ब्रह्माण्ड का अनुभव होता है। ये तपश्चर्या का अद्भुत चरण है, जब तप का तेज हमारी चेतना में स्थिर हो जाता है, तब ये अनुभव हमें होता है। गायत्री मंत्र का तेज जिसमें संग्रहित होता है, वह है- भर्गो। ये भर्ग ही हमें पिण्ड में ब्रह्माण्ड की अनुभूति देता है और भर्ग से ही हमें कूष्माण्डा के तत्व का बोध होता है।

पंचम दिवस- पाँचवें दिन की अधिष्ठात्री हैं- स्कन्दमाता और गायत्री मंत्र का पाँचवा शब्द है- देवस्य। और तप का पाँचवां आयाम है- दिव्यता का जन्म। आदिशक्ति अपने पाँचवे रूप में स्कन्दमाता हैं, जो ब्रह्माण्ड में दिव्यता को जन्म दे रही हैं। कूष्माण्डा रूप में माता ब्रह्माण्ड को जन्म देती हैं और स्कन्दमाता के रूप में वो ब्रह्माण्ड में दिव्यता को जन्म देती है और साथ ही जगत को यह संदेश देती हैं कि शिव और पार्वती की संतति दिव्य ही होगी।

माता पार्वती, प्रकृति की उस पवित्रता को पा रही हैं, जहाँ पर वे दिव्य ही हैं। दिव्यता से दिव्यता जन्म ले रही है। स्कन्दमाता का जो रूप है, वो ये उद्घोष करता है, कि वो स्वाभाविक तपश्चर्या है, उनमें स्वाभाविक दिव्यता है। इसी दिव्यता के बारे में हम आज कहते हैं कि प्रकृति में फिर से इस दिव्यता की पुनर्स्थापना होनी है। अंधकार का फिर से विसर्जन होना है। प्रकृति की संतानों को अपनी माता के सहयोग के लिए फिर से तपस्या के अनुशासन का पालन करना है।

छठवाँ दिवस- इस दिन की अधिष्ठात्री देवी हैं- कात्यायनी। यह आदिशक्ति माता पार्वती की तप-साधना का छठवाँ स्वरूप है। इस दिन गायत्री मंत्र का जो शब्द तप-साधना का आधार बनता है, वो है धीमहि और इसके साथ आरंभ होता है, तपश्चर्या का, तप-साधना का छठवाँ आयाम- जो रूपान्तरण का आरंभ है। दिव्यता की जब सघनता होती है, तब रूपान्तरण आरंभ होता है। तपश्चर्या जब कठोर होती है, तब रूपान्तरण आरंभ होता है।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। तप-साधना के दौरान माता पार्वती ने सूखे पत्तों को भी खाना छोड़ दिया, उमहि नामु तब भयउ अपरना॥ तब उमा का नाम अपर्णा हो गया। अपर्णा यानि कि जिसने पत्तों का भी त्याग कर दिया। ऐसी कठिन तपश्चर्या, ऐसी दुर्घर्ष तपश्चर्या। ये तपश्चर्या सामान्य नहीं है, गहन है, गंभीर है। आदिशक्ति माता पार्वती स्वयं ही इस तपश्चर्या को कर रही हैं और इस तपश्चर्या के छठवें रूप में उनका

कात्यायनी का स्वरूप उभरता है। ये कात्यायनी कौन हैं? कात्यायनी, कात्यायन ऋषि की कन्या के रूप में माता पार्वती हैं।

इस तरह अब शैलपुत्री ऋषिपुत्री का रूप धारण करती हैं। कहने का मतलब ये है कि शैल में स्थिरता तो है, लेकिन जड़ता भी है। ऋषि होने में स्थिरता तो यथावत बनी रहती है, लेकिन जड़ता की जगह चैतन्यता आ जाती है। ऋषि, चेतना का अधिष्ठान होते हैं, ऋषि चेतना का अनुसंधान करते हैं। ऋषि चेतना में जीते हैं। तप-साधना के छठवें आयाम में शैलपुत्री ऋषिपुत्री बन जाती हैं।

सातवाँ दिवस- आदिशक्ति माता पार्वती की तपश्चर्या का सातवां स्वरूप हैं- कालरात्रि और गायत्री मंत्र के सातवें शब्द 'धियो' का प्राकट्य है। गोस्वामी जी कहते हैं- कालरात्रि के आविर्भाव से चित्त की सम्पूर्ण शुद्धि अनिवार्य हो जाती है। कालरात्रि का प्रकट होना और कालरात्रि की प्रचण्ड ऊर्जा को सहन करना- ये दोनों अतिशय कठिन हैं। ये असम्भव को संभव कर दिखाने जैसा है। इसलिए माता पार्वती के तप को देखकर ब्रह्मा जी उनसे कहते हैं कि-

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी।
भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥

हे भवानी! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा (कठोर) तप किसी ने नहीं किया। माता कालरात्रि का आविर्भाव होना यानि कि सम्पूर्ण अशुद्धियों का, सम्पूर्ण तमस का, सम्पूर्ण कर्मों का, सम्पूर्ण संस्कारों का विनाश होना है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि लंका तो तमस का गढ़ था, तमस की नगरी थी और वहाँ लंका में रावण ने रख लिया- माता सीता को। अब यह तो कुछ ऐसे ही हुआ, जैसे कि कोई कहे कि अग्नि का अपहरण करके मैं इसे कहाँ रखूँ, कहाँ छिपाऊँ? तो इसे फूस के ढेर में रख देता हूँ। अब फूस के ढेर में अग्नि अगर रहेगी तो होगा क्या? अग्नि का स्वभाव और फूस का स्वभाव जब मिलेंगे, तो दहन होगा और उस दहन में फूस जल जाएगा। सीता और तमोगुण साथ-साथ नहीं रह सकते हैं। ऐसा नहीं हो सकता है कि सीता भी रहें और तमस् भी रहे। इसी तरह कालरात्रि का उदय भी हो और चित्त में अशुद्धियाँ भी हों, ऐसा संभव नहीं है।

आठवाँ दिवस- इस दिन माता पार्वती के महागौरी स्वरूप का प्राकट्य होता है। इसी के साथ गायत्री महामंत्र के आठवें शब्द यो नः का प्राकट्य भी होता है। तप साधना का आठवाँ आयाम है- शुद्धता की, शुद्ध सत्व की सघनता। माता पार्वती जो अपने प्रथम स्वरूप में शैलपुत्री थीं, अपनी तप की उग्रता व परिष्कार के कारण उन्होंने अपना आठवाँ स्वरूप धारण किया- महागौरी का।

यहाँ जो माता पार्वती तपश्चर्या कर रही हैं, वो हम सबकी माता हैं, जगत्माता हैं, यहाँ मूल प्रकृति तपस्या कर रही है, उन्हें सम्पूर्ण रूप से स्वीकारने से पहले भगवान शिव, सप्तऋषियों से कहते हैं कि पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु। आप लोग एक बार परीक्षा लेकर देखो कि शैलपुत्री में जगत्माता बनने की योग्यता है या नहीं। वो तपश्चर्या के शिखर पर पहुँच चुकी हैं, ऊर्जा उनकी शिखर पर है, लेकिन उस ऊर्जा का उपयोग करने के लिए क्या वो तैयार हैं? वो प्रेम, वो संवेदना, वो करुणा, वो उनमें है कि नहीं। कालरात्रि के रूप में माता पार्वती जो उग्रता के चरम पर पहुँच सकी हैं, क्या वो माता अन्नपूर्णा भी बन सकी हैं?

महागौरी का जो रूप है, वो पूर्णतया भिन्न है। महागौरी के रूप में माता अन्नपूर्णा हैं। अन्नपूर्णा वो, जो अपने बच्चों को खिलाए बिना खाती नहीं, जिसे अपने बच्चों के स्वास्थ्य की चिन्ता होती है, अपनी संतानों के सुख की चिन्ता होती है। वो गिरिजा, वो शैलपुत्री वो अपनी संतानों को सुखपूर्वक गौरी रूप में रखती हैं। इसलिए गणेश का एक नाम गौरीनन्दन भी है। वो अपनी संतान के लिए अपनी ऊर्जा न्यौछावर करती हैं। अन्नपूर्णा के रूप में माता ऐसी हैं कि समस्त त्रिभुवन को वो पोषण देती हैं।

नवम् दिवस- इस दिन आदिशक्ति माता पार्वती के नवें रूप का प्राकट्य होता है- माता सिद्धिदात्री के रूप में और इसी के साथ गायत्री मंत्र के नवें शब्द 'प्रचोदयात्' का प्राकट्य होता है। सिद्धिदात्री रूप में माता आदिशक्ति परम शिव के साथ एकात्म हैं। तप के इस अंतिम चरण में माता आदिशक्ति तप का फल प्राप्त करके फल देने की स्थिति में हैं, माता का सिद्धिदात्री स्वरूप उनके तप का परिणाम है।

उनका तप तो वहीं पूर्ण हो गया, जहाँ वो महागौरी कहलायीं क्योंकि उस रूप में वे स्वयं तपश्चर्या

बन गयीं। भगवान शिव के आदेश से सप्तऋषियों ने महागौरी की कई परीक्षाएँ लीं और फिर सप्तर्षियों ने उनमें साकार-सघन तप की प्रतिमूर्ति को देखा, जिसमें कोई कामना नहीं, वासना नहीं।

इस तरह आदिशक्ति माता पार्वती के तप के नौ आयाम पूर्ण होते हैं। प्रथमं शैलपुत्री यानि संकल्प स्थिर होने पर ही तप साधना का प्रारंभ होता है। द्वितीयं ब्रह्मचारिणी यानि ब्रह्म भाव में प्रतिष्ठित, जब ब्रह्मचर्य से इन्द्रियों की प्राणऊर्जा रूपान्तरित हो गयी, तो तृतीयं चन्द्रघण्टेति- चन्द्रघण्टा के रूप में माता आदिशक्ति का तीसरा स्वरूप उभरा- प्रकाशित प्राण और इस परिष्कृत प्राणऊर्जा से कूष्माण्डेति चतुर्थकम्- उनका चौथा रूप उभरा, कूष्माण्डा का, जो ब्रह्माण्ड को जन्म देने वालीं, ब्रह्माण्ड को धारण करने वालीं हैं।

ब्रह्माण्ड में दिव्यता को जन्म देने के लिए पंचमम् स्कन्दमातेति- पाँचवाँ रूप उनका स्कन्दमाता का प्रकट हुआ यानि उनमें मातृत्व का प्रादुर्भाव हुआ और षष्ठम् कात्यायनीति च, छठवें रूप में गिरिपुत्री ऋषिपुत्री कहलायीं, जिनका नाम कति गोत्र में उत्पन्न होने से कात्यायनी नाम पड़ा और यह नाम उन्होंने स्वीकारा। सप्तम् कालरात्रीति यानि तमस् का सम्पूर्ण विसर्जन, महागौरीति चाष्टमम्- शुद्ध साकार तपश्चर्या, श्वेत वर्ण। कालरात्रि के बाद महागौरी के रूप में वो ऐसे थीं, जैसे कि उनकी समस्त कालिमा समाप्त हो गयी है।

नवम् सिद्धिदात्रीति-सिद्धिदात्री होने का मतलब है कि इस रूप में वो सब कुछ दे सकती हैं, वो सब पर कृपा करती हैं। महादेव पर भी वो कृपा करती हैं। सिद्धिदात्री के रूप में भवानी 'अर्द्धनारीश्वरी' हैं, शिव-शक्ति एक रूप हैं, अलग-अलग नहीं हैं। सिद्धिदात्री रूप में माता आदिशक्ति ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, मोक्ष, परम पद ये सब दे सकती हैं, ये सिद्धियाँ, विभूतियाँ तो इनके समक्ष बहुत तुच्छ हैं। असल में जो हमें सिद्धियाँ नहीं, बल्कि सिद्धियों-विभूतियों से वैराग्य दे, जो हमें शुद्धि दे, वो सिद्धिदात्री हैं। इस तरह माता आदिशक्ति तप के नौ आयामों के माध्यम से हमें शिवत्व तक, परमतत्व तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

❑

इतरा यों उत्पन्न तो शूद्रकुल में हुई थी पर उसे महर्षि शाल्विन की धर्मपत्नी बनने का सुयोग मिल गया। उसके एक पुत्र था। एक बार राजा ने बड़ा यज्ञ आयोजन किया। उसमें सभी ब्राह्मणों और ब्रह्मकुमारों का सत्कार हुआ। सभी को दक्षिणा मिली, किन्तु इतरा के पुत्रों को शूद्र कहकर उस समान से वंचित कर दिया गया। शाल्विन बहुत दुःखी हुए। इतरा को भी चोट लगी। बज्जा भी उदास था। इस असमंजस ने उन्हें एक नया प्रकाश दिया। तीनों ने मिलकर निश्चय किया कि वे जन्म से बढ़कर कर्म की महत्ता सिद्ध करेंगे। शिक्षण का नया दौर आरभ हुआ। इतरा पुत्र ऐतरेय को धर्मशास्त्रों की शिक्षा में पारंगत कराया गया। देखते-देखते वे अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगे। एक बार वेद ऋचाओं के अर्थ करने की प्रतिस्पर्द्धा हुई। दूर-दूर देशों के विद्वान और राजा एकत्र हुए। प्रतियोगिता में सभी की पांडुलिपियाँ जाँची गईं। सर्वश्रेष्ठ ऐतरेय घोषित किए गए। इतरा शूद्र थी। उसके पुत्र ने पिता के नाम पर नहीं, माता की कुल परपरा प्रकट करने के लिए अपना नाम 'ऐतरेय' घोषित किया। 'ऐतरेय ब्राह्मण' वेद ऋचाओं के भावार्थ को प्रकट करने वाला अद्भुत ग्रंथ है और यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति जन्म से नहीं, संस्कारों से ही श्रेष्ठ कहलाता है।

मूर्धन्यों जागो, औरों से रही न कोई आस

इस माह की १ तारीख, समस्त गायत्री परिजनों का श्रद्धा पर्व है। माँ गंगा के धरती पर अवतरण का पर्व, माँ गायत्री के प्राकट्य का पर्व और हम सबके आराध्य, परमपूज्य गुरुदेव के महानिर्वाण का पर्व- अखण्ड ज्योति के समस्त पाठकों के लिए, गायत्री परिवार के समस्त स्वजनों के लिए एक गहन आत्म समीक्षा का पर्व भी है। इस दिन गायत्री परिवार के, अखण्ड ज्योति परिवार के प्रत्येक सदस्य को स्वयं का आत्म-मूल्यांकन करते हुए, उस विशेष प्रयोजन का ध्यान करना चाहिए जो उन्हें इस परिवार का अंग बनाने का मुख्य आधार रहा है।

इस समय अपने परिजनों को आंधी-तूफान में उड़ते-फिरते पत्तों की तरह भटककर एक निरुदेश्य व निष्प्रयोज्य जीवन नहीं जीना है, वरन् स्वयं को जागरूक रखते हुए बाकी सोते हुओं को जगाने की महती भूमिका का निर्वहन करना है और यही ध्येय, इस गायत्री जयंती पर हम सभी सृजन सैनिकों का होना चाहिए।

ये समझने में शायद ही किसी को शंका हो कि वर्तमान समय, मानवता के इतिहास का सबसे दुर्लभ समय है। एक बहुत बड़े समूह की संकीर्णता भरी, स्वार्थपरता भरी, निकृष्टता भरी नीतियों ने आज मानवता को बड़े विकराल समय का साक्षी बना दिया है। धर्म, न्याय, सदाचार अपनी आवाज खोते नजर आते हैं, तो वही कुविचारों, अनाचारों व अत्याचारों को समय की माँग मान कर सहज स्वीकारा जाता है।

भटकते हुए व्यक्तित्व, टूटते हुए परिवार व बिखरते हुए समाज आज के अविश्वास व आशंका से भरे समाज की कुरुपता की बानगी बने हुए हैं। यदि मानवीय वृत्तियों का पतन इसी कदर जारी रहा तो वह दिन दूर नहीं जब संस्कृति व अध्यात्म, इतिहास की पुस्तकों का हिस्सा बन जाएंगे व सच्चरित्रों की जीवनियाँ मात्र संग्रहालयों में देखने को मिलेंगी, जीवंत उदाहरणों के रूप में नहीं।

कहने वाले ये भी कहते हैं कि विश्व का लौकिक विकास अभूतपूर्व गति से हुआ है, जो कि सत्य भी है। चिकित्सा, विज्ञान, तकनीकी, अभियांत्रिकी इन सभी क्षेत्रों में जो विकास हुआ है, वो किसी को भी अचंभित कर सकता है पर समृद्धि के इन आवरणों के पीछे का जीवन, किसी दृष्टि से समृद्ध नहीं कहा जा सकता। मानसिक सुख-शांति गँवा कर बैठा मनुष्य, विपन्न परिस्थितियों से घिरा हुआ मनुष्य, युद्ध-आतंकवाद की आशंकाओं से डरा हुआ मनुष्य इसे देखकर भविष्य अंधकारमय नजर आता है, सुखद नहीं। मानवीय चिंतन ऐसे में किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी अवस्था में है-क्या करें, क्या न करें, कुछ सहज सूझ नहीं पड़ता है।

ऐसे विषम समय में समाधान के स्वर मात्र जाग्रत आत्माओं के अंत:करण में उभर सकते हैं और ऐसी आत्माऐं, महाकाल के सीधे आमंत्रण पर इस अखंड ज्योति परिवार का हिस्सा बने हैं। ये समय उन्हें अपनी प्रतिभा का मूल्यांकन करने में लगाना चाहिए व ये निर्धारित करने में लगाना चाहिए कि वे औसत मनुष्य की तरह अपना जीवन नरकीटकों व नरपशुओं की तरह नहीं गुजारेंगे।

इस गायत्री जयंती पर उन्हें परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माता जी को साक्षी मानकर अपनी विशिष्ट स्थिति का मूल्यांकन करना चाहिए व सामान्य गतिविधियों से ऊपर उठकर उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वयं को संलग्न करने का प्रण लेना चाहिए। चोर, घर में चोरी करते रहें व चौकीदार सोते रहें तो विषमताओं का निराकरण कैसे संभव हो सकेगा? अखंड ज्योति परिवार में इतनी जाग्रत आत्माओं के होते, असुरता को अपने कदम बढ़ाने का अवसर कदापि नहीं मिलना चाहिए।

हममें से प्रत्येक के पास उसकी अपनी जिम्मेदारियाँ हैं, इनसे हम परिचित भी हैं पर साथ ही यह भी सत्य है कि हमारे अनेकों जन्म, व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में ही गए होंगे। ये क्रम इस बार भी दुहराया जाए, ये जरूरी तो नहीं। यदि एक जन्म युग

विभीषिका के निवारण में लगा दिया जाए तो क्या हानि है ?

पीड़ित मानवता अश्रु भरे नयनों से हमारी ओर देखकर गुहार लगाती है तो क्या उसे उपेक्षित कर दिया जाए ? हमें पूर्ण विश्वास है कि अपने गायत्री परिजन, ऐसे समय में अपने निजी स्वार्थों की परिधि से हटकर सोचेगें व अन्यों के लिए उदाहरण बनने का कार्य करेगें।

ये समय लोकप्रवाह को उलटने का है, जनमानस को बदलने का है। अनेक व्यक्तियों के गलत दिशा में चल पड़ने से वह सही नहीं बन जाती है। आदर्शों व मूल्यों की पहचान भीड़ से नहीं गुणवत्ता से होती है। ज्यादा लोग तो रावण, कंस व हिटलर के पीछे भी खड़े थे पर उससे उनके द्वारा चयनित पथ, सही नहीं कहलाते। आज इंसानों की भीड़ की भीड़ गलत दिशा में चल निकली है व उसे सही दिशा दिखाने की आवश्यकता है। अचिन्त्य चिंतन, दुष्कृत्यों का आधार बनते हैं और कुकर्म, विषम परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। जब तक लोकमानस में गहराई से बसी विकृतियों का परिमार्जन नहीं होगा, प्रस्तुत समस्याओं का स्थायी समाधान न मिल सकेगा।

ऐसे समय में अखण्ड ज्योति परिवार के लिए इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है कि उन्हें स्वयं महाकाल द्वारा व्यक्तिगत निमंत्रण मिला है जो युगों-युगों में किसी विरले को मिल पाता है। श्रम का दान, समय का दान, अंश का दान तो शाश्वत अपेक्षाऐं हैं ही, यदि ऐसे समय में हमारे प्राणों की आहुति भी इस विशेष उद्देश्य के लिए देनी पड़े तो उसमें हमें संकोच नहीं करना चाहिए। ये समय चुकने का नहीं है।

समस्त सृष्टि, गायत्री परिजनों की बड़ी आशा भरी दृष्टि से देख रही है और हमारी पराजय, समस्त मानव जाति का दुर्भाग्य मानी जायेगी। युद्ध के मुहाने पर यदि अर्जुन ही हथियार डाल देंगे तो महाभारत कौन लड़ेगा ? इस विषम वेला में यदि अपने परिवार की जागरूक आत्माऐं ही हाथ पसार कर बैठ गयीं तो संकुचित वृत्ति वाले अन्य जनों से क्या आशा की जा सकती है ?

इस गायत्री जयंती पर समस्त गायत्री परिजनों को अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करते हुए युग साधना के लिए जुट जाना चाहिए। ये परंपरा आदिकाल से चली आ रही है कि बड़े उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, महान आत्माऐं अपने जीवन की आहुति सहजता से दे देती हैं। दधीचि से लेकर राणाप्रताप तक, आरुणि से लेकर रानी लक्ष्मी बाई तक, शिवि से लेकर भगतसिंह तक- अपने शास्त्र, ऐसे बलिदानों के उदाहरणों से भरे हुए हैं। यहाँ उतने बड़े बलिदानों की भी कामना नहीं की जा रही है बल्कि मात्र ये आशा की जा रही है गायत्री परिवार का प्रत्येक परिजन युगधर्म का न्यूतम निर्वहन तो अवश्य ही करेगा।

युगधर्म की माँग यह है कि हममें से प्रत्येक अपने समय, श्रम व उपार्जन का एक अंश नियमित रूप से युगदेवता के सम्मुख अर्पित करेगा। व्यक्तिगत कार्यों के लिए २३ घंटे भी दे दिए जाऐं तो भी दिन का एक घंटा, सप्ताह का एक दिन, साल का एक माह श्रेष्ठ कार्यों के लिए निकाले जा सकते हैं। संस्कृतिरूपी हमारी माँ कराहती रहेगी और हम उसके लिए क्या इतना समय भी न निकाल सकेंगे। इतना तो व्यक्ति अपरिचितों के लिए कर देता है फिर ये पुकार तो स्वयं महाकाल की है, हमारे आराध्य पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माता जी के है। इसे अनसुना कैसे किया जा सकता है।

जिसके पास अन्य जिम्मेदारियों के कारण लंबी अवधि दे पाने की स्थिति नहीं है, वे गायत्री जयंती से गुरु पूर्णिमा के १ माह के समय को ही अपनी युग साधना का एक अंश मानते हुए, इस अवधि में परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी के विचारों को अखण्ड ज्योति की सदस्यता के रूप में ५ नये सदस्यों तक पहुँचाने का निर्णय ले सकते हैं। यदि दो-तीन परिजन मिलकर सामूहिक रूप से भी ये करने का संकल्प उठाऐं तो देखते-देखते पूज्यवर की ये थाती अखण्ड ज्योति, ५ गुना ज्यादा परिवारों की शोभा बढ़ाने लगेगी।

बुराई को बाँटने को तो सभी तत्पर लगते हैं पर सद्विचारों के प्रसारण की जिम्मेदारी तो मात्र जाग्रत आत्माओं की है। १ माह तक एक घंटा मात्र रोज देने से ये कार्य, अत्यधिक सहजता से संभव हो सकेगा। अन्य सभी परिजन ये समय क्षेत्रीय शक्तिपीठों की गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने में दे सकते

हैं। शक्तिपीठ मात्र मंदिर बनकर रह जाऐं तो इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है ?

युगऋषि ने उनका निर्माण, सृजन सैनिकों की छावनियों के रूप में किया था- जहाँ से ज्ञान यज्ञ प्रसार के लिए, जनसंपर्क के लिए, आत्म परिष्कार के लिए, लोक कल्याण के लिए व भारतीय संस्कृति के नवोन्मेष के लिए निरंतर प्रयत्न किए जाते रहें। क्षेत्रीय परिजन, एक घंटा प्रतिदिन देकर इस जिम्मेदारी का निर्वहन अत्यंत सहजता से कर सकते हैं।

जाग्रत आत्माऐं समय की माँग को समझते हुए आगे आऐं व अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करें- इन पंक्तियों को लिखने के पीछे यही उद्देश्य है। जो लोग जगे हुए हैं, वे मार्गदर्शकों की भूमिका में आगे आऐं, जो जाग्रत हैं वे जागरूक बनें, और जो भी प्रयास इस जाग्रत व जागरूक आत्माओं के सम्मिलित प्रयास से संपन्न हों, उससे शान्तिकुंज, हरिद्वार को अवश्य परिचित कराऐं ताकि अपने परिवार की जाग्रत आत्माओं के कृत्तित्व की बानगी, अन्य मूर्च्छित आत्माओं के अंत:करण को झकझोरने के लिए यहाँ से उदाहरणों के रूप में प्रकाशित की जा सके। इस वर्ष की गायत्री जयंती परस्पर यही स्नेह, सहयोग व प्रकाश प्रदान करने का पर्व है।

❑

एक दिन एक राजा ने स्वप्न देखा कि कोई परोपकारी साधु उससे कह रहा है कि बेटा! कल रात तुझे एक विषैला सर्प काटेगा और उसके काटने से तेरी मृत्यु हो जायेगी। वह सर्प अमुक पेड़ की जड़ में रहता है। पूर्वजन्म की शत्रुता का बदला लेने के लिए वह तुझे काटेगा। प्रातःकाल राजा सोकर उठा और स्वप्न की बात पर विचार करने लगा। राजा सोचने लगा कि मेरा स्वप्न सच ही होगा। अब मुझे आत्मरक्षा हेतु क्या उपाय करना चाहिए? उसने निर्णय किया कि वह सर्प के साथ मधुर व्यवहार करके उसका मन बदल देगा। संध्या होते ही राजा ने उस पेड़ की जड़ से लेकर अपनी शैय्या तक फूलों का बिछौना बिछवा दिया, सुगंधित जलों का छिड़काव करवा दिया, मीठे दूध के कटोरे जगह-जगह रखवा दिये और सेवकों से कह दिया कि रात को जब सर्प निकले तो कोई उसे कष्ट न पहुँचाये।

रात को बारह बजे सर्प अपनी बाँबी में से फुफकारता हुआ निकला और राजमहल की तरफ चल दिया। वह जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे आनंदित होता गया। कोमल बिछोने पर लेटता हुआ, मनभावनी सुगंध का रसास्वादन करता हुआ, मीठा दूध पीता हुआ वह राजमहल की ओर बढ़ रहा था। उसके क्रोध का स्थान प्रसन्नता ने ले लिया। जब वह राजमहल पहुँचा तो देा कि प्रहरी उसे तनिक भी कष्ट नही पहुँचा रहे हैं। उसे लगा कि हानि पहुँचाने वाले के साथ जिस राजा का इतना मधुर व्यवहार है तो उसे काटना ठीक नहीं। वह राजा से बोला, 'तुहारे मधुर व्यवहार ने मुझे शत्रु से मित्र बना दिया है। मैं ये बहुमूल्य मणि तुहें भेंट करता हूँ इसे रखो।' इस तरह सर्प राजा का मित्र बनकर वापस चला गया। सद्व्यवहार से शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है।

मर्यादित जीवनशैली

ढर्रे की जिंदगी न आगे हमें बितानी होगी,
मर्यादित जीवनशैली सबको अपनानी होगी।

द्वार-द्वार पर विहगों का स्वर देता सुबह सुनाई,
जलधाराओं की तल भी अब देने लगा दिखाई,
दर्शनीय हो गई दूर से ही पर्वतमालाएँ
हुईं प्राणवाही अब नगरो की विषभरी हवाएँ,

इसी तरह यदी रहें, प्रकृति फिर से वरदानी होगी।
मर्यादित जीवनशैली सबको अपनानी होगी।

विश्वग्राम में धन- समृद्धि की बहुत महत्ता दीखी,
नहीं किसी ने जीवन- मूल्यों से गुणवत्ता सीखी,
धन ही जीवन-लक्ष्य बन गया, शापित हुई गरीबी,
इस संकट में किंतु हुए है रिश्ते पुनः करीबी,

उन्हीं श्रेष्ठ मूल्यों की गरिमा हमें बढ़ानी होगी।
मर्यादित जीवनशैली सबको अपनानी होगी।

अपनी शाश्वत संस्कृति का है मूल मंत्र जनमंगल,
आज स्वप्रेरित सेवा करते दीख रहे दल-के-दल,
जन- जन में जो सामाजिक दायित्व-बोध उभरा है,
उससे जन साधारण का व्यक्तित्व अधिक निखरा है,

हमें सदा ऐसी ही संवेदना जगानी होगी।
मर्यादित जीवनशैली सबको अपनानी होगी।

पशु-पक्षी तरु सरिता सागर सूर्य चंद्र या तारे,
मात्र कृतज्ञ-भाव के कारण सब हैं पूज्य हमारे,
अब भी जिनकी सेवा से बनते जीवन सुखदाई,
सहते जो आक्रमण, किंतु सेवा में कमी न आई,

वे अभिनंदनीय हैं, ऐसी दृष्टि बनानी होगी।
मर्यादित जीवनशैली सबको अपनानी होगी।

-शचीन्द्र भटनागर

कोरोना महामारी में युगतीर्थ की आपदा प्रबन्धन इकाई द्वारा हरिद्वार जनपद के विभिन्न स्थानों में जरूरतमंदों तक भोजन पहुँचाने की व्यवस्था बनाई गयी

अखण्ड ज्योति

(मासिक)

R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-07-2019

Regd No. Mathura-025/2018-2020

Licensed to Post without Prepayment

No: Agra/WPP-08/2018-2020

कोरोना संक्रमण के निवारण के लिये
मुख्य मंत्री राहत कोष में 1 करोड़ की धनराशि
का त्वरित सहयोग

माननीय प्रधानमंत्री के आह्वान पर विभिन्न गतिविधियों में युगतीर्थ के अन्तेवासी परिजनों द्वारा अनुशासनबद्ध भागीदारी

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक - मृत्युंजय शर्मा द्वारा जन जागरण प्रेस,बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा- 281003 से प्रकाशित। संपादक- डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष - 0565-2403940, 2400865, 240574 मोबाइल - 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

फैक्स - 0565-2412273 ईमेल - akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org